1) आयुर्वेद प्रकाश by माधव उपाध्याय — ~~[illegible]~~ Part I (सूतसाधन, रस प्रकरण) — Edited with commentary प्रदीप in Sanskrit and उद्योत in Hindi ~~and translation in~~ and Foot-notes in Sanskrit by पं. सोमदेवशर्मा शास्त्री प्रभाकर — very slightly pinholes in upper margin in few pages not affecting any matter.

लाहौर, 1942.

1 copies

2008 - 0269

011

Bill No 3./07-08

आयुर्वेदप्रकाशः

[प्रथमो भागः]

प्रदीपोद्योतव्याख्योपेतः

व्याख्याकारः—
प्रोफेसर सोमदेव शर्मा शास्त्री

* ॐ *

सारस्वतवंशावतंसोपाध्याय माधवविरचितः

आयुर्वेदप्रकाशः

(प्रदीपोद्योतव्याख्योपेतः)

प्रथमोभागः ।

(सूतसाधनाध्यायः, रसप्रकरणं वा)

व्याख्याकारः

साहित्यायुर्वेदाचार्यः

प्रोफेसर सोमदेव शर्म्मा शास्त्री प्रभाकर, ए. एम. एस.

प्रथमावृत्तिः] सन् १६४२ ई० [

प्रकाशक—

प्रोफेसर सोमदेव शास्त्री साहित्यायुर्वेदाचार्य

स्थान—भवीगढ़, पोस्ट—बरला,

ज़िला—अलीगढ़ (यू० पी०)

मुद्रक—

बा० प्रभुदयाल मीतल,

अग्रवाल प्रेस, अग्रवाल भवन, मथुरा ।

* ॐ *

* प्रस्तावना *

विदितमेवास्ति तत्र भवतां श्रीमतां भिषग्बुभूषूणां च विद्यर्थिनां यत्खलु सौराष्ट्रदेशजन्मना वाराणसीनिवासिना सारस्वतकुलावतंसोपाध्यायमाधवेन विरचितो रसमाधवापरनामाऽमायुर्वेदप्रकाशोऽल्पीयसैव कालेनायुर्वेदसंसारे परमां प्रतिष्ठामधिगतः, एष रसार्णव रसरत्नाकर रसहृदय रसरत्नसमुच्चय रसेन्द्रचिन्तामणि रसमञ्जरी रसराजलक्ष्मी रसचिन्तामणि रस पद्धति शार्ङ्गधरभावप्रकाशाद्यनेकपुरातनग्रन्थानां साररूपो रसतरङ्गिण्याद्यर्वाचीनरसग्रन्थानामाधारभूत इति प्रत्ननूत्नरसग्रन्थेषु शृङ्खलेव विराजते ।

अयं हि स्वानुभूतामेव रसशास्त्रप्रक्रियामवलम्ब्य विनिर्मित इति वैशिष्ट्यमेवास्य प्रसिद्धिहेतुरिति विज्ञायते । ख्रिस्तीय षोडशशताब्द्यां विरचितस्य भावप्रकाशस्य नामोल्लेखादसौ ख्रिस्तीयसप्तशताब्द्यां विनिर्मित इति प्रतीयते, इत्थं शतकत्रयसंवत्सरप्राचीनोऽयं रसग्रन्थोऽस्ति, किन्त्वस्य नाद्यावधि गीर्वाण्यां प्रान्तीयभाषास्यामन्यस्यां वा कापि व्याख्या निर्मितेति वैद्यसमाजे सर्वत्रायुर्वेदमहाविद्यालयेषु पाठ्यक्रमत्वेन च प्रसिद्धोऽपि नाधिकं

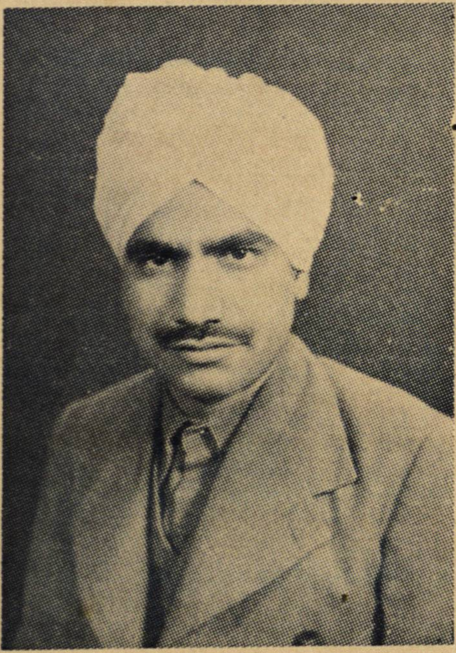
पठनपाठने प्राप्तप्रचार इति मनसि निधाय वैद्यानां विद्यार्थिनां च हितायास्य मया गीर्वाण्यां प्रदीपव्याख्या' राष्ट्रभाषायां हिन्द्यांच 'उद्योतव्याख्या' विरचिता। सोऽयं प्रदीपोद्योतव्याख्योपेतोऽयमायुर्वेद-प्रकाशः इदानीं मुद्राप्य प्रसिद्धिंनीतः, प्रूफसंशोधने सुहृद्वर्यवैद्य रामगोपालशर्मभिः मुद्रणकार्ये च श्रीप्रभुदयालमीतल गङ्गा-प्रसादजैसवालमहोदयैश्च यत्साहाय्यं समाचरितं तदर्थं तेषां भृशं कृतज्ञोऽस्मि।

त्वरया मुद्रापितेऽस्मिन्यत्क्वापि स्खलनं जातं तन्मानव-मतिदोषं विज्ञाय क्षन्तव्योऽहम्। किं बहुना—

गच्छतःस्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

फाल्गुन शु० ५ सं० १९९८ वि०
२० फर्वरी १९४२ ई०

विनयावनतः-
सोमदेव शर्मा



(साहित्यायुर्वेदाचार्य प्रो० सोमदेव शास्त्री)

विज्ञेषु प्रथितोऽस्ति योऽवनितले मान्यः सतां संसदि
प्रीत्या यस्य निवासमेत्य हृदये लीलायते भारती ।
वक्तृत्वे कवनेऽथ पाठनविधौ ख्यातो ऽद्वितीयश्च यः
सोऽयं वैद्यशिरोमणि विंनयते श्रीसोमदेवः सुधीः ॥

* ॐ *

भूमिका ।

भारतीय रसशास्त्र में उपाध्याय माधव रचित 'आयुर्वेदप्रकाश' अथवा 'रसमाधव' एक अद्वितीय सर्वोत्तम एवं अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ-रत्न है। यह रसार्णव, रसरत्नाकर, रसरत्नसमुच्चय, रसराजलक्ष्मी, रसेन्द्रचिन्तामणि, रसमञ्जरी, शार्ङ्गधरसंहिता और भावप्रकाश आदि अनेक पुरातन ग्रन्थों का सार तथा रसतरङ्गिणी आदि नूतन ग्रन्थों का आधार है, इस प्रकार यह प्राचीन तथा अर्वाचीन रसग्रन्थों के मध्य में शृङ्खला के समान है।

इसमें सोलहवीं शताब्दी में रचित 'भावप्रकाश' का नाम मिलता है, इसलिये यह आयुर्वेदप्रकाश, उससे पीछे सत्रहवीं शताब्दी में निर्मित हुआ है। लगभग तीन सौ वर्ष प्राचीन यह रसग्रन्थ, यद्यपि आयुर्वेद संसार में प्रसिद्ध है, किन्तु ऐसे उपयोगी ग्रन्थ पर, आज तक संस्कृत तथा हिन्दी आदि किसी प्रान्तीय भाषा में, कोई भी व्याख्या नहीं लिखी गई है, इसलिये वैद्यसमाज के लिए उपयोगी और नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ तथा अन्य आयुर्वैदिक कालिजों के पाठ्य-क्रम में स्वीकृत होने पर भी, वैद्य तथा विद्यार्थी, इस ग्रन्थ से कोई लाभ प्राप्त नहीं कर रहे हैं। यह विचार कर मैंने इस 'आयुर्वेद प्रकाश' पर संस्कृत भाषा में 'प्रदीप' और हिन्दी भाषा में 'उद्योत' नाम की सरल प्रामाणिक एवं विस्तृत व्याख्यायें लिखी हैं, जिससे आयुर्वेद जगत् में इसका व्यापक रूप से प्रचार हो सके।

आयुर्वेदप्रकाश रचयिता माधव—

उपाध्याय माधव, गुजरात में सत्रहवीं शताब्दी में उत्पन्न हुए थे। यह सारस्वत ब्राह्मण थे, परन्तु यह बनारस ही में रहते थे और वहीं पर इन्होंने आयुर्वेदप्रकाश का निर्माण किया था। इनका बनाया हुआ पाकावली ग्रंथ भी प्रसिद्ध है।

आयुर्वेदप्रकाश।

प्रत्येक प्राचीन रसग्रन्थों के विद्यमान रहने पर भी, बहुत थोड़े समय में यह 'आयुर्वेदप्रकाश' वैद्य समाज में प्रसिद्ध हो गया, इसका यह कारण है कि माधव ने, साध्य एव स्वयं (Precticalं, प्रैक्टिकल) अनुभूत किये हुए, रस, उपरस, धातु, उपधातु, रत्न तथा विष आदि का शोधन मारण लिखा है, जैसा कि उनके 'अशेषं' इत्यादि (श्लो० ६-१०) श्लोकों से विदित होता है। प्रायः सम्पूर्ण ग्रन्थ में अन्य प्रामाणिक रसग्रन्थों के ही श्लोक, उद्धृत किये हैं।

बम्बई से मान्यवर श्री यादवजी विक्रमजी द्वारा प्रकाशित मूल आयुर्वेदप्रकाश के द्वितीय संस्करण तथा पब्लिक लाइब्रेरी लाहौर की हस्तलिखित मूल आयुर्वेदप्रकाश की प्रति और उद्धृत पाठ वाले रसरत्नसमुच्चय, रसेन्द्रचिन्तामणि आदि रसग्रन्थों के आधार पर, इस आयुर्वेदप्रकाश का संशोधन किया गया है।

प्रदीप तथा उद्योत व्याख्या सहित इस आयुर्वेदप्रकाश से, यदि वैद्यबन्धुओं और विद्यार्थियों का कुछ भी लाभ हुआ, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

२०-२-४२.

विनम्र—
सोमदेव शर्मा

* ॐ *

प्रथम अध्याय का मनन।

आयुर्वेदप्रकाश के इस प्रथम अध्याय का नाम 'सूत साधनाध्याय' है, सम्पूर्ण अध्याय में रस (पारद) का प्रकरण होने से, इसको 'रसप्रकरण' नाम से भी पुकारा जा सकता है। इस अध्याय में ६१५ श्लोक हैं, इनमें कुछ गद्यसूत्र भी हैं।

पारद विमर्श—

पारद, खान से निकलने के कारण खनिज पदार्थ है। इसको अंग्रेजी में मर्करी (Mercury) कहते हैं। यद्यपि चरकसंहिता और सुश्रुतसंहिता में पारद का नाम मिलता है, तथापि भारतीय-चिकित्सा में पारद का अधिक प्रचार शार्ङ्ग-धर के समय से हुआ है। इसका इतिहास बहुत पुराना है, इसके सर्व प्रथम प्रचारक आचार्य महादेवजी माने जाते हैं। पारद की चिकित्सा, दैवी चिकित्सा अथवा रसचिकित्सा कहलाती है।

रसरत्नसमुच्चय में हिमालय पर्वत से पारद की उत्पत्ति मानी गई है। हिंगुल से भी पारद निकलता है। आज कल यूरोप तथा अमेरिका आदि में बहुत पारद निकलता है, खान से निकले हुए पारद में, नाग बङ्ग, मल, विष, वह्नि आदि आठ स्वाभाविक दोष हैं, जिनमें से विष, वह्नि और मल मुख्य दोष हैं और नाग तथा बंग, यौगिक दोष हैं, इनके अतिरिक्त सात

कञ्चुक औपाधिक दोष माने गये हैं। इन दोषों को दूर करने के लिये पारद के संस्कार किये जाते हैं।

विभिन्न आचार्यों के मत से पारद के आठ, अठारह या उन्नीस संस्कार माने गये हैं। यथा—

•अष्टादशैव संस्कारा ऊनविंशतिकाः क्वचित्।
सम्प्रोक्ता रसराजस्य वसुसंख्याः क्वचिन्मताः॥
(आय० प्र० अ० १ ३२)

इनमें से स्वेदन आदि आठ संस्कार, लोहसिद्धि (रस, रक्त आदि नवीन धातु निर्माण रूप रसायन) तथा लोहसिद्धि (स्वर्ण आदि निर्माण, धातुवाद, कीमियागिरी) में उपयोगी हैं, और गगनभक्षणमान आदि शेष रससंस्कार केवल लोहसिद्धि के लिए ही उपयोगी माने गये हैं। यथा —

इत्यष्टौ सूतसंस्काराः समा द्रव्ये रसायने।
शेषाः द्रव्योपयोगित्वान्न ते वैद्योपयोगिनः॥
(आयु० प्र० १।३६)

संस्कृत शुद्ध पारद।

स्वेदन आदि संस्कारों से, पारद के आवरणस्वरूप सात कंचुक दोष के सात भाग नष्ट हो जाने पर, आठवां भाग संस्कृत (शुद्ध) पारद शेष रह जाता है। यथा—

स्वेदनादिनवकर्मसंस्कृतः सप्तकञ्चुकविवर्जितो भवेत्।
अष्टमांश इह शिष्यते तदा शुद्धसूत इति कथ्यते बुधैः॥
(आयु० प्र० १।१०६)

यदि पारद के स्वेदन आदि सब संस्कार न किये जा सकें, तो कम से कम स्वेदन, मर्दन तथा ऊर्ध्वपातन संस्कार तो अवश्य करने चाहिये। यथा—

एतावदप्यशक्तः सूतस्य शोधनं मनुजः।
स्वेदनमर्दनमूर्ध्वंपातनमेतत्त्रयं कुर्यात्॥
(आयु० प्र० १। १५७)

जारणसंस्कार।

स्वेदन आदि के पश्चात्, पारद का जारण संस्कार सब से अधिक महत्त्वपूर्ण तथा कठिन है। इसमें पारद के साथ गन्धक, स्वर्ण तथा अभ्रक आदि का जारण करते हैं, गन्धकजारण से पारद में, रोग नाशक शक्ति पैदा होती है। प्रायः छैगुना (षड्गुण) गन्धकजारण आवश्यक है, वैसे तो जितना अधिक गन्धकजारण किया जाता है, उतना ही अधिक रोगनाशक गुण वाला बनता है। यथा—

(१) रसागमेषु सर्वेषु दुर्लभं जारणं मतम्।
(रसकामधेनु, ३३० पृष्ठ)

(२) रसगुणबलिजारणं बिनाऽयं न खलु रुजांहरणक्षमो रसेन्द्रः।
(आयु० प्र० अ० १।११४)

(३) षड्गुणे गन्धके जीर्णे सर्वरोगहरो रसः॥
(आयु० प्र० १।१२०)

(४) गन्धकजारणरहितः संशुद्धोऽपि रसो योगेसु न योज्यः, गदहन्तृत्वशक्त्यनुदयात्।
(आयु० प्र० अ० १।१३३)

(४) अजारित रसो देवि ! नैव कुर्यान्निजं गुणम्।
(रसकामधेनु, ३३० पृष्ठ)

(५) यथा स्याज्जारणा बह्वी तथा स्याद् गुणदो रसः ।
(आयु० प्र० अ० १।१२७)

गन्धकजीर्ण पारद की अपेक्षा, स्वर्णजीर्ण तथा अभ्रक-सत्व आदि जीर्ण पारद में अधिक गुण होते हैं ।

मूर्च्छना—निश्चित रूप से, पारद की रोग नाशक शक्ति को ही मूर्च्छना कहते हैं। यह सगन्ध मूर्च्छना तथा निर्गन्ध मूर्च्छना भेद से दो प्रकार की होती है । इनमें से सगन्ध मूर्च्छना, यद्यपि बहिर्धूम, अन्तर्धूम, निर्धूम भेद से तीन प्रकार की होती है, तथापि इसके अन्तर्धूम पाक और बहिर्धूम पाक भेद ही प्रसिद्ध हैं। रससिन्दूर चन्द्रोदय आदि कूपी पक्व रस, इन्हीं से बनते हैं। इनमें से रससिन्दूर का वर्णन, आयु० प्र० (पृ०४६३) में आ चुका है।

निर्गन्ध मूर्च्छना का उदाहरण, रसकर्पूर है, तथा रसपुष्प एवं मुग्धरस के दो प्रयोग, पाश्चात्य डाक्टरों के अनु-सार, रसतरङ्गिणी में और दिये गये हैं। इनमें रसकर्पूर बहुत प्रसिद्ध है। आज कल रसतरङ्गिणी में वर्णित, रसकर्पूर के आभ्यन्तरिक प्रयोग (रसकर्पूर गुटिका), तथा बाह्य-प्रयोग (भूतघ्नचक्रिका, तथा रसकर्पूर द्रव) का भी अधिक प्रयोग होता है ।

पारदजारण संस्कार के अतिरिक्त, आगे के अन्य संस्कार, ताँबा से स्वर्ण बनाने के लिए उपयोगी हैं। यह अत्यंत श्रमसाध्य हैं। इनको पाठक आयुर्वेदप्रकाश में ही देख लें।

❀ विषयानुक्रमणिका ❀

॥ ॐ ॥

सारस्वतवंशावतंसोपाध्यायश्रीमाधवविरचितः

आयुर्वेदप्रकाशः ।

(सारस्वतवंशोद्भवसोमदेवशर्मशास्त्रिकृतप्रदीपोद्योतव्याख्याभ्यां संवलितः)

प्रथमोऽध्यायः ।

(ग्रन्थकर्तृमंगलाचरणम्)

*अर्थप्रकाशकासारविमर्शाम्बुजिनीमयम् ।
सच्चिदानन्दविभवं शिवयोर्वपुराश्रये ॥ १ ॥

प्रदीपव्याख्या ।

व्याख्याकर्तुर्मंगलाचरणम् ।

भक्तानां भवभीतिकृन्तनपरः प्रोक्तो गुरूणां गुरु
र्दुष्टानां दमनाय यश्च विबुधैः साक्षात्कृतान्तः स्मृतः ।
काम्यानां परमावधिर्निगदितोध्येयः सतां प्राणिनां
नः सः पातु विभुः प्रभुः प्रतिदिनं ज्ञानेन गम्यः सदा ॥१॥

---

* 'अथप्रकाशकासार' इति पाठान्तरं कस्मिंश्चिद्रसेन्द्रचिन्तामणि पुस्तके, तत्राथ शब्दो मङ्गलवाचको ज्ञेयः ।

आयुर्वेदप्रकाशोऽयं प्रसिद्धोऽपि न विवृतः
गीर्वाण्यां, प्रान्तभाषायामन्यस्यां वापि च क्वचित् ॥२॥
तस्मादस्य प्रदीपोऽयं सोमदेवेन शर्मणा।
क्रियते वैद्यवर्याणां विद्यार्थिनां हिताय च ॥३॥

प्रदीपः— उपोद्घातः— तत्रादौ सारस्वतकुलावतं सोपाध्यायश्रीमाधवनामाग्रन्थकारः 'ग्रन्थादौग्रन्थमध्येग्रन्थान्ते च मङ्गलाचरणम्' इति प्राचीनशिष्टपरम्परानुसारं प्रारिप्सित ग्रन्थप्रत्यूहव्यूहव्युदासार्थं श्लोकद्वयेन मङ्गलमाचरति तत्रापि रसशास्त्रस्य महेश्वरमूलत्वात्सर्वप्रथममुमयासहितं महेश्वरं स्तौति प्रथमश्लोकेन तदनु विघ्नहरत्वेन प्रसिद्धं गणाधिपं द्वितीय श्लोकेन स्तौति।

प्रदीपः—अर्थेति-(अहंमाधवः) अर्था एतद्ग्रन्थप्रतिपाद्यरससंस्काराद्या विषयाः (यथा चानुपदमेव ग्रन्थकारः स्वयं तृतीयेश्लोके वक्ष्यति अधुनारसराजस्य संस्कारान्संप्रचक्ष्महे) तेषां यः प्रकाशः पौनःपुन्येन प्रस्फुरितज्ञानं स एव कासारः, तस्मिन्, अर्थप्रकाशकासारे, यो विमर्शो युक्तिप्रमाणपुरस्सरं याथार्थ्येन वस्तुतत्वविचारः, स एवाम्बुजिनी कमलिनी तदेतद्द्वयमयं, (शिवयोर्वपुषोर्विशेषणमेतत्) सच्चिदानन्दः सत्वगुणोद्रेकेण प्रतीयमानश्चैतन्यस्वरूपो य आनन्दः स एवविभव ऐश्वर्यं यत्र तादृशं शिवयोः, शिवश्चशिवा च शिवौ तयोरुमामहेश्वरयोर्वपुः शरीरमाश्रये स्वेष्टसिद्धये सेवे। अत्रानुष्टुप् छन्दः परम्परितरूपकालङ्कारश्चास्ति ॥१॥

ज्ञातव्यम्—श्लोकोऽयं ग्रन्थकर्त्रा माधवेन ढुण्ढुकनाथ विरचितरसेन्द्रचिन्तामणितः (अ० १।२) उद्धृतः।

उद्योत व्याख्या ।

(मंगलाचरण)

धरणि भानु नक्षत्र शशि, रचा और संसार ।
जिसने उस प्रभु को सदा, अभिवादन शतवार ॥
आयुर्वेदप्रकाश यह, है अत्यन्त प्रसिद्ध ।
इसकी टीका आज तक, किन्तु नहीं है सिद्ध ॥
सोमदेव बुध ने करी, टीका यह उद्योत ।
प्राप्त कर सकें वैद्यवर, हिन्दी में सुखस्रोत ॥

उपोद्घात ।

उद्योत—आयुर्वेदप्रकाश ग्रन्थ के प्रारम्भ में, सारस्वत ब्राह्मणों के कुल में उत्पन्न, उपाध्याय श्रीमाधव, 'ग्रन्थ के आदि मध्य और अन्त में मङ्गलाचरण करना चाहिये'। इस प्राचीन शिष्टपरम्परा के अनुसार, प्रारम्भ किये जाने वाले ग्रन्थ के विघ्नों के समूह को दूर करने के लिये, दो श्लोकों में परमेश्वर का मङ्गलाचरण करते हैं। यह आयुर्वेदप्रकाश रस शास्त्र का ग्रन्थ है और रसशास्त्र का विकास सर्वप्रथम परमेश्वरस्वरूप शिव से होने से पार्वती सहित महादेव की स्तुति प्रथम श्लोक में की है और फिर विघ्नहर रूप से प्रसिद्ध गणेशजी की स्तुति द्वितीय (दूसरे) श्लोक में की है।

उ०—मैं माधव (अपनी अभीष्टसिद्धि के लिये) इस ग्रन्थ में वर्णित पारदसंस्कार आदि विषयों के प्रतीयमान ज्ञान रूपी तालाब में उत्पन्न वास्तविक विचारस्वरूप कमलिनीमय, सच्चिदानन्दस्वरूप, शिव (महादेव) और पार्वती के शरीर का ध्यान करता हूँ ॥१॥

ज्ञातव्य–उपाध्याय श्रीमाधव ने यह श्लोक, रसेन्द्र चिन्तामणि (अ० १ श्लोक २) से उद्धृत किया है ।

देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः ।
विघ्नं हरन्तु हेरम्बचरणाम्बुजरेणवः ॥२॥

प्र०—देवेन्द्रेति–देवेन्द्रस्य सुरेश्वरस्य मौलौ (विद्यमाना या मन्दारमाला तस्याः) मन्दाराणां पारिजातपुष्पाणां ये मकरन्दकणाः परागबिन्दवस्तैररुणा अरुणवर्णाः हेरम्बस्य गणाधिपस्य चरणाम्बुजरेणवः पादारविन्दपांशवः (अस्माकं) विघ्नं प्रत्यूहं हरन्तु दूरीकुर्वन्तु अत्रानुष्टबुछन्दस्तद्गुणालङ्कारश्चास्ति ॥२॥

उ०—देवराज इन्द्र के शिर के मुकुट में विद्यमान पारिजात के फूलों के परागबिन्दुओं से लाल रंग वाली गणेशजी के चरण कमलों की धूलि हमारे विघ्नों को दूर करे ॥२॥

(प्रतिज्ञा)

अधुना रसराजस्य संस्कारान् संप्रचक्ष्महे ।
नानातन्त्राणि संदृश्य भिषजां सिद्धिहेतवे ॥३॥

प्र०—अथ ग्रन्थप्रतिपाद्यविषयं प्रतिजानीते, अधुनेति–अधुना = मङ्गलाचरणानन्तरं, भिषजां = चिकित्सिकानां, सिद्धि हेतवे चिकित्सायां साफल्यप्राप्त्यर्थं नानातन्त्राणि = प्राक्तनाचार्यैर्विरचितानि रसार्णवरसहृदयरसरत्नाकररसरत्नसमुच्चयशार्ङ्गधरभावप्रकाशादीनिशास्त्राणि, संदृश्य विलोक्य, रसराजस्य = पारदस्य, संस्कारान् = स्वेदनादिसंस्कारान् संप्रचक्ष्महे = वर्णयामि, कथयामि, अत्रानुष्टप् छन्दः ॥३॥

उ०—मङ्गलाचरण करने के पश्चात् अब हम वैद्यों को चिकित्सा में सफलता प्राप्त कराने के लिये पुराने आचार्यों द्वारा बनाये गये रसार्णव, रसहृदय, रसरत्नाकर, शार्ङ्गधर संहिता और भावप्रकाश आदि शास्त्रों को देख कर स्वेदन आदि पारद के संस्कारों का वर्णन करते हैं ॥३॥

संस्काराः परतन्त्रेषु ये गूढ़ाः सिद्धसूचिताः ।
तानेव प्रकटीकर्तुमुद्यमं किल कुर्महे ॥४॥

प्र०—संस्काराइति परेषां नित्यनाथवाग्भटादीनां रसशास्त्राचार्याणां तन्त्रेषु = शास्त्रेषु, गूढ़ा रहस्यरूपेण, गुप्तरूपेण-लिखिताः, असूयककृपणगुरुद्वेषिनास्तिकदुराचाराद्यनधिकार शिष्यहस्तेपतितानामेतेषां रससंस्काराणांदुरुपयोगो माभूदितिहेतोः, किंवा गुप्ता रसविद्या वीर्यवती भवतीतिनियमेन गूढ़ा रससंस्कारा वीर्यवन्तःस्युरिति गुप्तसंकेतेनलिखिताः

यथा—रसविद्या दृढं गोप्या मातुर्गुह्यमिवध्रुवम् ।
भवेद्वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या च प्रकाशनात् ॥
(रसरत्नसमुच्चय, अ० ६)

सिद्धैः = गोविन्दनागार्जुनादिभिराचार्यैः सूचिताः = समुपदिष्टाः, सिद्धिसूचिता इति पाठान्तरे तु सिद्धया = रोगापहरणफल विलोकनेन सूचिता विज्ञाताः, ये संस्काराः = स्वेदनाद्याः पारद-संस्काराः सन्ति तानेव प्रकटीकर्तुं = प्रकाशयितुमुद्यमं वयं कुर्म्महे किलेतिनिश्चयेन । प्रतिज्ञयाऽनया ग्रन्थकर्तु भिषजामुपकारिता स्वस्य ग्रन्थस्य प्रामाणिकता च व्यज्यते । अत्रानुष्टुप् छन्दः ॥३॥

❀ सिद्धिंसूचिताः इतिपाठान्तरं रसेन्द्रचिन्तामणौ ।

ज्ञातव्यम्—श्लोकोऽयंरसेन्द्रचिन्तामणितः (अ० १।६ उद्धृतो माधवेन)

उ०—नित्यनाथ तथा वाग्भट आदि प्राचीन रसशास्त्राचार्यों के शास्त्रों में जो गूढ़ (रहस्यपूर्ण तथा संकेत रूप से लिखित) तथा गोविन्द नागार्जुन आदि सिद्ध पुरुषों द्वारा वर्णित जो स्वेदन आदि पारद के संस्कार हैं उनको प्रकाशित करने के लिये हम प्रयत्न करते हैं ॥४॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० १।६) से उद्धृत किया है।

गूढ़संस्कार—रहस्यपूर्ण अथवा संकेतरूप से लिखित अथवा गुप्त रूप से लिखित संस्कार। शास्त्रकारों का ऐसा सिद्धान्त है कि रस विद्या गुप्त रखनी चाहिये, क्योंकि गुप्त रखने से वह वीर्यवती हो जाती है और प्रकट करने से वीर्य रहित हो जाती है।

यथा—रसविद्या दृढं गोप्या मातुर्गुह्यमिव ध्रुवम्।
भवेद्वीर्यवती गुप्ता निर्वीया च प्रकाशनात् ॥४॥

(रसरत्नसमुच्चय अ० ६)

सिद्धि सूचिता के स्थान में कुछ ग्रन्थों में सिद्धि सूचिताः यह पाठ मिलता है, इसका "रोगहरण फल देखने से ज्ञात हुये संस्कार यह अर्थ है।"

(अथ ग्रन्थार्थचौरेभ्यः शापदानम्)

ग्रन्थादस्मादाहरन्ति प्रयोगान्,
स्वीयं वाऽस्मिन्नामधेयं क्षिपन्ति ।

गोत्राण्येषामस्मदीयश्रमोष्मा,
भस्मीकुर्वन्नायुगं बोभवीतु ॥ ५ ॥

प्र०—ग्रन्थार्थ = चौरेभ्यः शापं ददन्नाह ग्रन्थादिति—परकीर्तिविलोपकाः स्वयशोऽभिलाषुका ये जनाः अस्मात् = बहुश्रमविरचितान्मदीयायुर्वेदप्रकाशात्. ग्रन्थान्निबन्धात् प्रयोगानाहरन्ति = प्रयोगान् मन्नामग्राहंबिना चोरयित्वा स्वीयग्रन्थेषु सन्निवेशयन्ति, वा = अथवा, तथाऽकृत्वा अस्मिन् = मदीयायुर्वेदप्रकाशे-ग्रन्थे एव, मन्नामविलोपपूर्वकं स्वीयंनामधेयं = निजाभिधानं क्षिपन्ति, एषामुभयविधानामपि जनानां गोत्राणि = कुलानि, नामानि वा 'गोत्रं नाम्न्यचलेकुले" इति विश्वः, अस्मदीयश्रमोष्मा = पारदसंस्कारप्रक्रियापरीक्षणादिकर्मविहितपरिश्रमोत्पन्नोऽस्मदीय—सन्तापः, आयुगं = युगपर्यन्तं भस्मीकुर्वन् बोभवीतु = पुनः पुनरतिशयेन वा भवतु अतोऽस्मादायुर्वेदप्रकाशात् प्रयोगापहारेऽत्र निजनामनिवेशे च मा कश्चिदपि प्रयततु । अत्र शालिनी-वृत्तम् ॥ ५ ॥

ज्ञातव्यम्—श्लोकोऽयं रसेन्द्रचिंतामणेः प्रथमाध्यायात् (अ० १।७ उद्धृतो) माधवेन, एतेन विज्ञायते सैषाग्रंथार्थ चौरप्रथा रसेन्द्रचिंतामणिकर्तुः समयेऽप्यासीत् वस्तुतस्तु रसेन्द्र-चिंतामणिकर्तुरपिप्राक् चक्रपाणिसमयेऽप्यासील्लब्धप्रचारा एषा प्रथा अतएवचक्रपाणिरपि स्वीयचक्रदत्ताख्यचिकित्सासंग्रह ग्रंथान्ते 'यः सिद्धयोग' इत्यादिश्लोकेन प्रथामेतां निरोद्धुं शाप-मदाद्ग्रन्थार्थचौरेभ्यः ।

ग्रन्थ में वर्णित विषय के चोरों को शाप ।

उ०—दूसरों की कीर्ति को छिपा कर अपनी कीर्ति फैलाने के अभिलाषी जो मनुष्य बहुत परिश्रम से बनाये गए

मेरे इस आयुर्वेदप्रकाश ग्रन्थ से प्रयोगों को चुरा कर मेरा नाम लिये बिना अपना बनाया हुआ प्रसिद्ध करके अपने ग्रन्थ में रखेंगे, अथवा इस आयुर्वेद ग्रन्थ में ही मेरा (माधव) नाम लेखक के रूप से छिपा कर अपना नाम लिख देंगे, इन दोनों प्रकार के मनुष्यों के कुल अथवा नाम को पारद के संस्कार कर्म तथा उनके परीक्षण करने के अत्यन्त परिश्रम से उत्पन्न मेरी शापाग्नि से सन्तप्त श्वासरूपी आह युग पर्यन्त सदैव बारम्बार भस्म करती रहेगी ॥५॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक रसेन्द्रचिन्तामणि के प्रथम अध्याय (अ० १।७ से उद्धृत किया है। इससे प्रतीत होता है कि रसेन्द्रचिन्तामणि के रचयिता के समय में भी कुछ लेखक दूसरे के ग्रन्थ में वर्णित किये गये विषय, तथा प्रयोगों को चुरा कर अपने नाम से अपने बनाये ग्रन्थ में रख लेते थे, अथवा दूसरे मृत या जीवित लेखकों के नाम, उनके ग्रन्थों से हटा कर उनके स्थान में लेखक के रूप में अपना नाम लिख देते थे, वास्तव में रसेन्द्रचिन्तामणि के कर्त्ता से भी पूर्व चक्रपाणि के समय में भी ग्रन्थ के विषय तथा प्रयोग चुराने को प्रथा का अधिकता से प्रचार था। इसलिये इस प्रचार की प्रथा को बन्द करने के लिये इन्होंने अपने चक्रदत्त नाम के चिकित्सा ग्रन्थ के अन्त में यह निम्नलिखित श्लोक लिखा है—

य: सिद्धयोगलिखिताधिकसिद्धयोगाँ
स्तत्रैव निःक्षिपति केवलमुद्धरेद्वा।

(ग्रन्थस्थरसकर्मादीनां प्रामाण्यम्)

अश्रौषं बहुविदुषां मुखादपश्यं
शास्त्रेषु स्थितमकृतं न तल्लिखामि ।
यत्कर्म व्यरचयमग्रतो गुरूणां
प्रौढानां तदिह वदामि वीतशङ्कः ॥ ६ ॥

प्र०—आयुर्वेदप्रकाशस्थपारदसंस्कारादिकर्मणां प्रामाण्यमाह—अश्रौषमिति—यत्कर्म = पारदस्य संस्कारादिकर्म, बहुविदुषाम् = रसशास्त्रपारङ्गतानामनेकेषां विद्वद्धौरेयाणां मुखादश्रौषं = श्रुतवानस्मि, तथा शास्त्राभ्यासममये शास्त्रेषु = रसार्णव रसरत्नाकररसरत्नसमुच्चयरसेन्द्रचिन्तामणिप्रभृतिरसशास्त्रेषुस्थितमपश्यम् = दृष्टवानस्मि किन्तु तत्पारदकर्म यद्यकृतं = निजहस्ताभ्यामनिर्मितमननुभूतंच, तन्न लिखामि । परन्तु यत्कर्म प्रौढानाम् = रसशास्त्रोद्भटविदुषां गुरूणामग्रतः = पुरो व्यरचयम् = स्वयं निर्मायान्वभूव तदेव कर्मेह आयुर्वेदप्रकाशग्रन्थे, वीतशङ्कः = निःशङ्कः दोषान्वेषणपरा मदीयेऽस्मिन ग्रन्थे दोषानन्वेषयिष्यन्तीति विगतशङ्कः सन् वदामि = कथयामि । स्वानुभूतपारदसंस्कारादिकर्मविषयप्रतिपादनच्छिद्रान्वेषणपरेभ्योनैवभयलेशोऽस्तीति । अत्र-प्रहर्षिणीवृतम् ॥ ६ ॥

ज्ञातव्यम्—श्लोकोऽयं रसेन्द्रचिन्तामणेः प्रथमाध्यात् (अ० १।४) उद्धृतो माधवेन ।

आयुर्वेदप्रकाश में वर्णित पारद के संस्कारादि कर्म आदि की प्रामाणिकता

उ०—मैंने पारद के संस्कार आदि जो कर्म रसशास्त्र

के अनेक विद्वान् आचार्यों के मुख से सुने हैं, तथा शास्त्रों का अभ्यास करते समय रसार्णव, रसरत्नाकर, रसरत्नसमुच्चय और रसेन्द्रचिन्तामणि आदि रसशास्त्रों में देखा है, किन्तु अपने हाथ से बनाकर उनका अनुभव नहीं किया है तो मैं उनको नहीं लिखता हूँ परन्तु जिन पारद के संस्कार कर्म आदि कर्मों को रसशास्त्र के सिद्धहस्त तथा अपूर्व विद्वान् गुरुवरों के सामने अपने हाथ से बनाकर अनुभव किया है, मैं उन्हीं को इस आयुर्वेदप्रकाश ग्रन्थ में निःशङ्क होकर कहता हूँ। अर्थात् अपने हाथ से बना कर अनुभव किये हुए पारद के संस्कार आदि कर्मों के ग्रन्थ में लिखने में मुझे बिलकुल डर नहीं है कि दोष ढूँढेंगे, क्योंकि सब कुछ अपना अनुभूत लिखा है, इसलिये इसमें कुछ न्यूनता आदि दोष न होने से किसी से कुछ भय भी नहीं है।

ज्ञातव्य--माधव ने यह श्लोक रसेन्द्रचिन्तामणि के प्रथम अध्याय (अ० १४) से उद्धृत किया है।

(रसकर्मयोग्यगुरुशिष्याः)

अध्यापयन्ति यदि दर्शयितुं क्षमन्ते
सूतेन्द्रकर्म गुरवो गुरव स्त एव ।
शिष्यास्त एव रचयन्ति पुरो गुरूणां
शेषाः पुनस्तदुभयाभिनयं भजन्ते ॥ ७ ॥

प्र०—रसकर्मयोग्यशिष्यानाह– अध्यापयन्तीति—ये गुरवः सूतेन्द्रकर्म = पारदसंस्कारक्रियाम्, अध्यापयन्ति -शिष्यान् ग्रन्थ पाठनमात्रेण पाठयन्ति, तें यदि तत्पारदसंस्कारकर्म, दर्शयितुं = प्रत्यक्षदर्शनेन शिष्याननुभावयितुं क्षमन्ते = समर्थाः सन्ति चेत्तर्हि

त एव गुरवः = वास्तविकगुरवः, याथार्थ्येन गुरुशब्दवाच्याः- सन्ति, एवमेव शिष्याश्चापि त एव वास्तविकशिष्या सन्ति ये हि गुरुवर्यैरध्यापितं सम्यक्तया प्रत्यक्षदर्शनेनानुभवपथमानीतं च सूतेन्द्रकर्म तेषां गुरूणां = गुरुवर्याणां पुरोऽग्रे, समक्षमित्यर्थः, रचयन्ति = स्वीयन्यूनताऽन्यथाकरणादिसन्देहपरिहाराय . निज- हस्तेननिर्मायानुभवन्ति प्रत्यक्षीकुर्वन्तीत्यर्थः । शेषाः = केवलं ग्रन्थपाठनपराः पारदसंस्कारादिकं प्रत्यक्षतोऽनुभावयितुमसमर्था गुरवः, ग्रन्थाक्षरवाचनपरायणाः गुरुसमक्षं पारदसंस्कारकरणे- विमुखाःशिष्याश्च पुनः, तदुभयाभिनयं = तेषामुभयेषां वास्तविक गुरुशिष्याणामभिनयं स्वरूपमात्रेण नाटयकर्म भजंते = कुर्वन्ति न ते वास्तविकगुरुशिष्याः सन्तीत्यर्थः । अत्र वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ७ ॥

ज्ञातव्यम्—श्लोकोऽयंरसेन्द्रचिन्तामणिग्रन्थात् (अ० १।५) उद्धृतो माधवेन ।

रस (पारद) संस्कार आदि कर्म के योग्य गुरु तथा शिष्य।

उ०—जो गुरु (आचार्य), पारद के संस्कार आदि की क्रियाओं को शिष्यों को पुस्तकों द्वारा ही पढ़ाते हैं, यदि वे गुरु उन पारद संस्कार की क्रियाओं को शिष्यों को प्रत्यक्ष (प्रेक्टिकल Practical) रूप में कर दिखाने में भी समर्थ हैं तो वे ही गुरु वास्तविक गुरु हैं, इसी प्रकार वास्तविक शिष्य वे ही हैं जो गुरु द्वारा पढ़ाये गये और प्रत्यक्ष कराये गये पारदसंस्कार की क्रियाओं को अपनी न्यूनता तथा अशुद्ध क्रिया के सन्देह दूर करने के लिये गुरु के सामने अपने हाथ से करके अनुभव करते हैं, इनके विपरीत, केवल ग्रन्थ पढ़ाने वाले; प्रत्यक्ष रूप से शिष्यों को पारदसंस्कार करके

सिखाने में असमर्थ गुरु तथा स्वयं पारदसंस्कार कर्म का प्रत्यक्ष अनुभव न कर केवल ग्रन्थमात्र पढ़ने से ही संतुष्ट शिष्य, उन वास्तविक गुरु शिष्यों का स्वरूप धारण कर नाटक मात्र करते हैं अर्थात् वे वास्तविक गुरु और शिष्य नहीं हैं॥ ७ ॥

ज्ञातव्य--माधव ने यह श्लोक, रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० १।५) से उद्धृत किया है।

यद्यन्मयाऽक्रियत कारयितुं च शक्यं
सूतेन्द्रकर्म तदिह प्रथयांबभूवे ।
अध्यापयन्ति य इद न तु कारयन्ति
कुर्वन्ति नेदमधियन्त्युभये मृपार्थाः ॥ ८ ॥

प्र०—यदिति-मया = माधवेन, यद्यत् सूतेन्द्रकर्म = पारदसंस्कारकर्म, अक्रियत = स्वयंप्रत्यक्षीकृतं, कारयितुं च शक्यम् = शिष्यद्वारेण स्वसमक्षं रचयितुं च शक्यं तदेव पारदसंस्कारकर्म, इह = आयुर्वेदप्रकाशे प्रथयांबभूवे = विस्तरेण निबद्धम् । ये गुरवः केवलमिदं पारदसंस्कारकर्म शिष्यानध्यायपयन्ति = ग्रन्थेष्वेव पाठयन्ति. न तु शिष्येभ्यः प्रत्यक्षतःकारयन्ति, ये च शिष्या इदं पारदसंस्कारकर्म केवलमधियन्ति = ग्रन्थेष्वेव पठन्ति न तु कुर्वन्ति = गुरुसमक्षं रचयन्ति, ते इमे उभयेऽपि गुरुशिष्याः, मृषार्थाः = मिथ्यारूपेण गुरुशिष्यनामधारिणोऽवास्तविक गुरु-शिष्याः सन्ति । अत्र वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ८ ॥

ज्ञातव्यम्— श्लोकोऽयं रसेन्द्रचिन्तामणितः (अ० १।३५) उद्धृतो माधवेन ।

उ० – मैंने (माधव ने) जो जो पारद के संस्कार कर्म आदि स्वयं अनुभव किये हैं और शिष्यों द्वारा भी अपने सामने प्रत्यक्ष अनुभव कराये हैं; वे ही पारद के संस्कार कर्म आदि इस आयुर्वेदप्रकाश में विस्तारपूर्वक लिखे हैं, जो गुरु इन पारद के संस्कार कर्म को शिष्यों को प्रत्यक्षरूप से न सिखा कर कर केवल ग्रन्थों में ही पढ़ाते हैं, और जो शिष्य इनको प्रत्यक्ष न कर केवल ग्रन्थों में ही पढ़कर सन्तुष्ट होजाते हैं, वे दोनों गुरु तथा शिष्य, झूठ ही नामधारी गुरु शिष्य हैं, अर्थात् वे वास्तविक गुरु और शिष्य नहीं हैं ॥ ८ ॥

ज्ञातव्य–माधव ने यह श्लोक रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० १।३५) से उद्धृत किया है।

(निजग्रन्थरचनाशैली)

संस्काराः शिवजनुषो बहुप्रकारा–
स्तुल्या ये लघुबहुलप्रयाससाध्याः ।
यद्येकं सुकरमुदाहरामि तेषां
व्याहारैः किमिह फलं ततः परेषाम् ॥ ९ ॥

प्र० – स्वीयग्रन्थरचनाशैलींनिर्दिशन्नाह-संस्काराइति-शिवजनुषः = महादेवांगात्समुत्पन्नस्य पारदस्य, यथाचोक्तं रसार्णवे– "ममदेहरसो यस्माद्रसस्तेनायमुच्यते", बहुप्रकाराः = अनेकविधास्तथा लघुबहुलप्रयाससाध्याः = केचिदल्पश्रमेण केचिच्चपुनरनल्पश्रमेणसाध्याः, किन्तुतुल्याः = श्रमविभेदेऽपि समानफलाः येसंस्काराः = स्वेदनाद्याः संस्काराः सन्ति, यद्यहं तेषामनेकविधानां मध्यात् सुकरं = अल्पश्रमसाध्यत्वेन सुखेनसम्पादयितुं शक्यमेकमेव कञ्चिदु-

दाहरामि = वर्णयामि चेत्ततस्तदापरेषां = अन्येषामनल्पश्रमसाध्यत्वेन दुःखेन सम्पादयितुं शक्यानां व्याहारैः = उक्तिभिरिह = आयुर्वेदप्रकाशाख्यग्रन्थे किं फलं ? किमपि नेत्यर्थः, अयंभावः-अस्मिन्नायुर्वेदप्रकाशे फलसाम्येनानल्पश्रमसाध्यान् पारदसंस्कारानुपेक्ष्याल्पश्रमसाध्या एव संस्कारा वर्णिताः। अत्र प्रहर्षिणी वृत्तम् ॥६॥

ज्ञातव्यम्–श्लोकोऽयं रसेन्द्रचिन्तामणितः (अ० १।८) उद्धृतो माधवेन।

आयुर्वेदप्रकाश की रचनाशैली।

उ०–पारद के अनेक प्रकार के थोड़े तथा बहुत परिश्रम से सिद्ध होने वाले परन्तु समानफलवाले जो स्वेदन आदि संस्कार हैं, यदि उन अनेक प्रकार के संस्कारों में से थोड़े परिश्रम से सिद्ध हो जाने वाले किसी एक संस्कार का भी वर्णन कर दूं, तो फिर उन बहुत परिश्रम से सिद्ध होने के कारण दुःसाध्य संस्कारों का इस आयुर्वेदप्रकाश में वर्णन करने से क्या लाभ है ? अर्थात् इस ग्रन्थ में दुःसाध्य संस्कारों का वर्णन करने से कोई लाभ नहीं है, क्योंकि दुःसाध्य होने से वैद्य उनको नहीं कर सकेंगे, इसलिये इस आयुर्वेदप्रकाश में बहुत परिश्रम से सिद्ध होने वाले संस्कारों को छोड़ कर थोड़े परिश्रम से सिद्ध होने वाले संस्कारों का ही वर्णन किया गया है ॥ ६ ॥

ज्ञातव्य–माधव ने यह श्लोक रसेन्द्रचिन्तामणि (अध्याय १।८) से उद्धृत किया है।

कर्म यद्यदसाध्यं स्याद्दुर्लभं यद्यदौषधम्।
तत्तत्सर्वं परित्यज्य सारभूतं प्रकाशितम् ॥ १० ॥

प्र०—कर्मेति-यद्यत् कर्म = पारद = संस्कारकर्म,असाध्यं = साधयितुमशक्यं स्यात्, यदौषधं च दुर्लभं = दुःखेनलब्धुंशक्यं तत्तत्सर्वं = असाध्यपारदसंस्कारकर्म दुर्लभमौषधं च परित्यज्य = विहाय सारभूतं तत्वरूपं, अस्मिन्नायुर्वेदप्रकाशे मया प्रकाशितं = प्रकटितं वर्णितमित्यर्थः । अत्रानुष्टप छन्दः ॥ १० ॥

उ०—जो पारद की संस्कार कर्म नहीं हो सकते हैं और जो जो औषधि दुर्लभ हैं, उनको छोड़ कर तत्व बातें इस ग्रन्थ में प्रकट की हैं ॥ १० ॥

(रसकर्मादावसिद्धिकारणम्)

क्वचिच्छास्त्रे क्रिया नास्ति कर्मसंख्या न च क्वचित् ।
रसयुक्तिः क्वचिन्नास्ति सम्प्रदायः क्वचिन्न च ॥११॥
अतः सिद्धिर्न सर्वत्र रसे वाऽपि रसायने ।
वैद्यवादे प्रयोगे च तस्मद्यत्नो मया कृतः ॥ १२ ॥

प्र०-रसकर्मादावसिद्धिकारणमाह-क्वचिदिति-क्वचिच्छास्त्रे कस्मिंश्चिद्रसशास्त्रे क्रिया = पारदसंस्कारकर्म नास्ति, क्वचिच्छास्त्रे कर्मसंख्या = पारदसंस्कारकर्मसंख्या नास्ति, क्वचिच्छास्त्रे रस-युक्तिः = पारदसंस्कारसाधनोपायो नास्ति क्वचिच्छास्त्रे च सम्प्रदायः = गुरुसम्प्रदायः, गुरुपरम्पराप्राप्तविधिर्नास्ति, अतोऽस्माद्धेतोः रसे = पारदे पारदकर्मेत्यर्थः, रसायने = धातुवादे, लोहसिद्धौ वैद्य-वादे = वैद्यके, आयुर्वेदे, प्रयोगे वैद्यकप्रयोगे वा सर्वत्रापि, सिद्धिः = साफल्यं, नास्ति लोके । तस्माद्धेतोः, मया माधवेन यत्नः = रसादौ सर्वत्रापि सिद्ध्यर्थमग्रे प्रदर्श्यमान उपायः, कृतो विहितः ॥ अत्रानुष्टप्छन्दः॥ ११–१२ ॥

पारद के संस्कार कर्म आदि में असफलता का कारण।

उ०-किसी रसशास्त्र में पारद के संस्कार नहीं लिखे हैं, किसी में पारदसंस्कारों की संख्या नहीं लिखी है और किसी में पारदसंस्कार करने की युक्ति नहीं लिखी है और कहीं गुरुसम्प्रदाय नहीं है, इसकारण वैद्यों को पारद संस्कारकर्म सुवर्ण आदि रसायन निर्माण और वैद्यक तथा उसके प्रयोगों में सर्वत्र सफलता नहीं मिलती है, इसलिये मैंने (माधव ने) पारद के संस्कार आदि में वैद्यों को सफलता प्राप्त कराने के लिये आगे लिखा हुआ उपाय किया है॥ ११-१२॥

(रसादिसिद्धौ यत्नः)

(आयुर्वेदप्रकाशस्यान्यशास्त्रेभ्योवैशिष्ट्यम्)

यद्यद्गुरुमुखोद्गीतं स्वानुभूतं च यन्मया।
तत्तल्लोकहितार्थाय वक्ष्याम्यनतिविस्तरम्।
यदन्यत्र तदत्रास्ति यदत्रास्ति न कुत्रचित्॥ १३॥

प्र०—रसादिसिद्धौ यत्नमाह-यदिति-पारदसंस्कारकर्मादिसिद्ध्यर्थं यद्यद्गुरुमुखोद्गीतं=गुरूपदिष्टं यच्च मया स्वानुभूतं= स्वयमनुभूतं तत्तत्सर्वं गुरूपदिष्टं स्वयमनुभूतं च, अनतिविस्तरं= नातिविस्तरं यथास्यात्तथा लोकहितार्थाय=लोककल्याणाय वक्ष्यामि=कथयिष्यामि।

प्र०-आयुर्वेदप्रकाशस्यान्यरसशास्त्रेभ्यो वैशिष्ट्यमाह-यदिति-अन्यत्र=अन्यरसशास्त्रेषु यज्ज्ञानमस्ति तदस्मिन्नायुर्वेदप्रकाशे, ऽस्ति, परन्तु यदत्रास्ति तत्कुत्रचित=कस्मिंश्चिदपि रसशास्त्रे नास्ति॥ अत्रानुष्टप्छन्दः॥ १३॥

(पारद के संस्कार आदि में सफलता का उपाय)

उ०—मैंने जो बातें गुरुमुख से सुनी हैं और जिनका मैंने स्वयं अनुभव किया है, मैं उन सब को संस्कार के कल्याण के लिये संक्षेप से इस आयुर्वेदप्रकाश ग्रन्थ में लिखूंगा ।

आयुर्वेदप्रकाश की अन्य रसशास्त्रों से विशेषता ।

रसार्णव रसरत्नसमुच्चय तथा तथा रसेन्द्रचिंतामणि आदि रस ग्रन्थों में जो ज्ञान है, वह सब इस आयुर्वेद प्रकाश में हैं, परन्तु इस ग्रन्थ में जो ज्ञान है वह किसी अन्य रसशास्त्र में नहीं है, इसलिये यह सब से अपूर्व है ॥ १३ ॥

(रसवैद्यप्रशंसा)

मुक्त्वैकं रसवैद्यं तु लाभं पूजां च कीर्तनम् ।
तृणकाष्ठौषधैर्वैद्यः को लभेत वराटिकाम् ॥ १४ ॥

उ०—रसवैद्यस्य प्रशंसामाह मुक्त्वेति—एकं केवलं रसवैद्यं मुक्त्वा—विहाय तृणकाष्ठौषधिचिकित्सकः को वैद्यो वराटिकामन्तरा लाभं, धनलाभं, पूजासत्कारं कीर्तनं च लभेत—प्राप्नुयात् न कोऽपीत्यर्थः अयंभावः, दैवी, मानवी, आसुरीभेदेन त्रिविधा चिकित्सा शास्त्रे अभिहिता, तास्वसाध्यरोगेष्वप्यल्पमात्रयैव सद्यःफलविधायकतया पारदनिर्मिता दैवीचिकित्सैव प्रधाना, अतस्तयैव धनलाभादिकं प्राप्यते, तृणादिकाष्ठौषधिनिर्मितैश्चूर्णादिभिःसाधारणफलकारिण्या मानवचिकित्सया न किमपि धनादिकं लभ्यते वैद्येन, अतो रसवैद्य एव श्रेष्ठः । अत्रानुष्टप् छन्दः॥१४॥

रसवैद्य की प्रशंसा ।

उ०—केवल रसवैद्य को छोड़कर घास फूंस आदि काष्ठौषधियों से चिकित्सा करनेवाला कौन वैद्य, रोगियों से

कौड़ियों (अल्प धन) के अतिरिक्त धन की प्राप्ति, सत्कार, और प्रसिद्धि को प्राप्त कर सकता है अर्थात् कोई नहीं प्राप्त कर सकता, केवल रसवैद्य ही अतुल धन आदि प्राप्त कर सकता है ॥ १४ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक रसमंजरी से उद्धृत किया है। शास्त्रों में दैवी, मानवी और आसुरी भेद से तीन प्रकार की चिकित्सा लिखी है, उनमें से पारद के प्रयोगों से होने वाली दैवी (रस) चिकित्सा ही असाध्य रोगों में भी अल्पमात्रा से ही शीघ्र फलदायक होने से सर्वश्रेष्ठ है, इसलिये उसी से संसार में धनादि की प्राप्ति होसकती है, घासफूस आदि काष्ठौषधि (चूर्णादि)से होने वाली मानवी (काष्ठौषधि)चिकित्सा से धन आदि की प्राप्ति नहीं होती, इस कारण रसवैद्य ही श्रेष्ठ होता है।

(श्लाघनीयो रसवैद्यः)

यावत्सूतो न शुद्धो न च मृत इह वा मूर्च्छितो गन्धबद्धो
नो वज्रं मारितं स्यान्न च गगनवधो *नोपधातुश्च शुद्धः।
स्वर्णाद्यं सर्वलोहं विषमपि न मृतं तैलपाको न जात-
स्तावद्वैद्यःक सिद्धो भवति वसुभुजां मण्डले श्लाघनीयः १५

प्र०—यावदिति वैद्येन इह लोके यावत् सूतः = पारदः = शुद्धः = स्वेदनादिसंस्कारैः सप्तकञ्चुकिविवर्जितः, न कृतः, यावत् पारदो मृतो न = भस्मरूपो न कृतः, वाऽथवा पारदो

* 'नोपसूताश्च शुद्धाः' इति पाठान्तरं मुम्बय्यां मुद्रितायुर्वेद प्रकाशे।

मूर्च्छितः = कज्जलाभो ऽचञ्चलो निश्चितरूपेण व्याधिघातकश्च न कृतः यथाचोक्तमग्रे —

कज्जलाभो यदासूतो विहाय घनचापलम् ।
मूर्च्छितस्तु तदा ज्ञेयो नानावर्णो ऽपि च क्वचित् ॥

"मूर्छितं व्याधिनाशने इति च" यावत् पारदोगन्धबद्धः = गन्धकयोगेन बद्धः न कृतः यावद्वज्रं = हीरकं न मारितं, यावच्च गगनवधः = अभ्रकभस्म, न कृतम् यावदुपधातुः = स्वर्णमाक्षिकादिनं शुद्धः कृतः यावत् स्वर्णाद्यं सर्वलौहं = स्वर्णादिसप्तधातुः न मृतं = भस्मरूपं न कृतम्, यावद् विषमपि न मृतं यावच्च तैलपाको न जातः तावत्स वैद्यो वसुभुजां = राज्ञां मण्डले श्लाघनीयः = प्रशंसनीयः, सिद्धो वैद्यः क्वभवति ? न भवतीत्यर्थः अयं भावः, राज्ञां मण्डले पारदसंस्करादिकर्मकरो वैद्य एव श्लाघनीयो राजवैद्यपदाधिकारी च भवतीति पारदसंस्कारादिकर्माणि वैद्येनावश्यमेवानुष्ठेयानि । अत्र स्रग्धरा वृत्तम् ॥ १५ ॥

श्लाघनीय रसवैद्य ।

उ०-वैद्य ने इस लोक में जबतक पारद को स्वेदन आदि संस्कारों द्वारा सात कञ्चुकियों से रहित शुद्ध नहीं किया, जब तक पारदकी भस्म नहीं की, अथवा पारद को मूर्छित (निश्चित रूप से रोगनाशक) नहीं किया, जब तक पारद को गंधक की सहायता से बंधा हुआ नहीं किया, जब तक हीरा और अभ्रक की भस्म नहीं की, जबतक स्वर्णमाक्षिक आदि उपधातुओंको शुद्ध नहीं किया, सुवर्ण आदि धातुओं की भस्म नहीं बनाई, विष को नहीं मारा, तथा तैलपाक नहीं किया, तब तक वह रसवैद्य, राजाओं के समूह में प्रशंसनीय राजवैद्यकी पदवी नहीं प्राप्त कर सकता है ॥ १५ ॥

ज्ञातव्य—राजाओं के यहाँ पारद के संस्कार आदि कर्म करनेवाला रसवैद्य ही प्रशंसनीय तथा राजवैद्य पदवी का अधिकारी होसकता है, इसलिये प्रत्येक वैद्य को पारद के संस्कार आदि कर्म अवश्य करने चाहिये।

शुद्ध पारद–पारद में आवरणस्वरूप पर्पटी पाटिनीभेदी आदि सात कञ्चुक (काँचली) होती हैं, स्वेदन आदि संस्कारों से इनके सात भाग दूर होजाने पर आठवां (१/८) भाग शुद्ध रहजाता है, यह पारद, कंचुकदोष से रहित, शुद्ध होताहै, जैसा कि रसरत्नाकर का निम्नलिखित श्लोक माधव ने स्वयं उद्धृत किया है—

स्वेदनादिनवकर्मसंस्कृतः सप्तकञ्चुकविवर्जितो भवेत्।
अष्टमांश इह शिष्यते तदा शुद्सूत इति कथ्यते बुधैः॥
(आयुर्वेदप्रकाश, अ० १, श्लोक १०६)

मृतपारद—जब पारद, औषधियों से मर्दन कर भूधर आदि पुटों में फूंक दिये जाने पर तेज (चकाचौंध) रहित, हलका (लघु), सफेद, सुवर्ण लोह आदि धातुओं को ग्रसने वाला (भोक्ता), चञ्चलतारहित तथा अग्निस्थाई (अङ्गारों रूपी अग्नि पर रखने से विरूप न होने वाला) होजाय, तब वह मृतपारद कहलाता है, जैसा कि स्वयं माधव ने आगे आयुर्वेद प्रकाश के प्रथम अध्याय के ४०७वें श्लोक में लिखा है—

अतेजा अगुरुः शुभ्रो लोहहाऽचञ्चलो रसः।
यदा नावर्तते वह्नौ नोर्ध्वंगच्छेत्तदा मृतः॥

मूर्छित पारद—जब पारद काजल के समान काला, चंचलता रहित और निश्चित रूप से रोग नाश करने की सामर्थ्यवाला हो जाता है, तब वह मूर्छितपारद कहलाता है।

जैसा कि स्वयं माधव ने आगे आयुर्वेदप्रकाश के इसी प्रथम अध्याय में लिखा है--

कज्जलाभो यदा सूतो विहाय घनचापलम् ।
मूर्छितस्तुतदा ज्ञेयो नानावर्णोऽपि च क्वचित् ॥
मूर्छितो व्याधिनाशने ।

गन्धबद्ध पारद—शुद्ध पारद १ पल और शुद्ध गन्धक १ कर्ष लेकर तप्तखल्व में डालकर, ऊपर से देवदाली का रस भरदे और सावधानी से हाथ की अँगुली से पारद का मर्दन करता रहे तो पारद 'गन्धबद्ध' होजाता है, अर्थात् गंधक की सहायता से पारद बँध जाता है, यह गन्धबद्ध पारद, गन्धक जारण तथा नागमारण आदि क्रियाओं में प्रयुक्त होता है।

यथा— शुद्धसूतपलैकन्तुकर्षैकं गन्धकस्य च ।
स्विन्नखल्वे विनिक्षिप्य देवदालीरसप्लुतम् ॥
मर्दयेच्च करांगुल्या गन्धबद्धः प्रजायते ॥ १६ ॥
फलं चास्य गन्धकजारणनागमारणादि ॥२३॥
रसेन्द्रचिंतामणि अ० ५)

वज्रमारण (हीराभस्म) विधि-आयुर्वेदप्रकाश के पांचवें अध्याय में लिखी है।

गगनवध (अभ्रकभस्म) विधि-आयुर्वेदप्रकाश, अ० २ श्लो० ११९ से १२८ तक लिखी है।

उपधातुशुद्धिः-स्वर्णमाक्षिक आदि उपधातुओं की शोधन विधि-आयुर्वेदप्रकाश के चतुर्थ अध्याय में लिखी है।

स्वर्णादि मारण (भस्म) विधि-आयुर्वेद प्रकाश के तृतीय अध्याय में लिखी है।

विषमारण विधि-आयुर्वेदप्रकाश के षष्ठ (छठे) अध्याय में लिखी है।

अथ रसदोषाः—

(रसस्य नैसर्गिका अष्टौ महादोषाः)

नागो वङ्गो मलो वह्निश्चापल्यं* च विषं गिरिः ।
असह्याग्निर्महादोषा निसर्गात् पारदे स्थिताः ॥१६॥

प्र०—पारदस्याष्टौ नैसर्सिकमहादोषानाह—नाग इति पारदे नागाद्यष्टौ महादोषा निसर्गात्=स्वभावात्स्थिताः । अत्रानुष्टप् छन्दः ॥ १६ ॥

ज्ञातव्यम्—रसतरङ्गिण्याः पञ्चमतरङ्गस्य पारदस्य नैसर्गिकदोषवर्णनपरः सप्तमः श्लोकोऽस्यश्लोकस्यैवानुवादरूपः । श्लोकोऽयं रसेन्द्रसारसंग्रहे ऽप्यस्ति । रसदोषविषये मतभिन्नता-अस्ति-यथा रसेन्द्रचूड़ामणौ रसप्रकाशसुधाकरे च पंचैव-रसदोषा मताः ।

पारद के आठ नैसर्गिक (स्वाभाविक) महादोष ।

उ०—पारद (पारे) में १-नाग (सीसा), २-वङ्ग (रांगा), ३-मल, ४-अग्नि ५-चञ्चलता ६-विष ७-गिरिदोष ८-असह्याग्निदोष (अग्नि को न सहना, अग्नि पर गर्म करने से उड़ जाना) ये आठ महा (बड़े) दोष स्वभाव से ही रहते हैं ।१६।

ज्ञातव्य—रसतरङ्गिणी की पंचम तरङ्ग का पारद के नैसर्गिक दोषों का वर्णन करने वाला सातवां श्लोक, आयुर्वेद-प्रकाश के इसी श्लोक का अनुवाद मात्र है । रसेन्द्रसारसंग्रह ग्रन्थ में भी यह श्लोक मिलता है । पारद के दोषों के विषय में अनेक मत हैं रसेन्द्रचूड़ामणि तथा रसप्रकाशसुधाकर आदि

---

* चाञ्चल्यमिति पाठान्तरं रसेन्द्रसारसंग्रहे ।

कुछ रसग्रन्थों में पारदके पाँच तथा अन्यों में सात तथा तीन नैसर्गिक दोष लिखे हैं। यथा—

१—मलदोषं भवेदेको द्वितीयो वह्निसञ्ज्ञकः ।
विषदोषस्तृतीयस्तु तथोन्मत्तश्चतुर्थकः ॥
पंचमः शैलदोषस्तु पञ्च दोषाः प्रकीर्तिताः ॥
(रसेन्द्र चूड़ामणि)

२- दोषाः पञ्च समुद्दिष्टाः पारदानां भिषग्वरैः ।
मलो विषं तथा वह्निर्मदो दर्पश्च वै क्रमात् ॥
(रसप्रकाश सुधाकर अ० १ श्लो० २५-२६)

३—मलं विषं वह्निगुरुत्वचापलं नैसर्गिकं दोषमुशन्ति तज्ज्ञाः ।

४—तेषु नैसर्गिका दोषाः पञ्च (रससंकेतकलिका)

५—विषं वह्निर्मलं चापि चांचल्यं चाथ गौरवम् ।
दोषा नैसर्गिकाः प्रोक्ताः ...

६—रसात्र दोषा अमी ।
नागो वङ्गविषौ मलश्च रलता वह्निर्गिरे जन्मजः ।
(रसपद्धति, श्लो० ४)

७-८—विषं वह्नि मलश्चेति दोषा नैसर्गिकास्त्रयः ।
(रसरत्नाकर, तथा रसरत्नसमुच्चय, अ० ११)

९-क—मलशिखिविषनामानो रसस्य नैसर्गिकास्त्रयो दोषाः ।
आ-मलादिदोषत्रयमेतदत्र नैसर्गिकम् (योगरत्नाकर)

(नैसर्गिकमहादोषाणां फलम्)

जाड्यगण्डौ तनौ नागात् कुष्टं वङ्गाद्रुजो मलात् ।
दाहोवह्नेश्चचापल्याद्वीर्यनाशो मृतिर्विषात् ॥१७॥
गिरेः स्फोटो ह्यसह्याग्निर्दोषान्मोहोऽभिजायते ।

प्र०—नैसर्गिकमहादोषाणां फलमाह जाड्येति तनौ=शरीरे, नागात्=नागदोषात् जाड्यगण्डौ=जाड्यकपोलौ, वङ्गात्कुष्ठं, मलाद्रुजः=मूर्च्छादिपीड़ाः, वह्नेर्दाहः=देहसन्तापः, चापल्यात्=चाञ्चल्यात्, वीर्यनाशः=वीर्यक्षयः, विषात्=विषदोषात् मृतिः=मरणं, गिरेः=गिरिदोषात् स्फोटः असह्याग्निदोषात् मोहः=वैचित्यं च, अभिजायते = समुत्पद्यते । अत्रानुष्टप् छन्दः ॥१५॥

ज्ञातव्यम्—पारददोषाणां फलेऽपि मतवैचित्र्यमस्ति, यथा-रसेन्द्रसारसंग्रहादिषु नागात्कुष्ठं मलदोषाज्जाड्यं वर्णितम् ।

उ०—पारद के स्वाभाविक नाग (सीसा) दोष से कपोलों (गालों) की जड़ता (जकड़ाहट), वङ्ग (रांगा) दोष से कुष्ठ (कोढ़) रोग, मलदोष से मूर्च्छा आदि रोग, अग्निदोष से शरीर में सन्ताप (जलन), चञ्चलता दोष से वीर्यक्षय, विषदोष से मृत्यु, गिरि के (पहाड़ी भूमि के सम्बन्ध से) गुरुता, भारीपन दोष से विस्फोट, और असह्याग्नि (अग्नि पर गर्म करने से उड़जाना) दोष से मोह उत्पन्न होता है। अर्थात् स्वाभाविक नागादिदोषों से युक्त अशुद्धपारद के सेवन करने से शरीर में जड़ता तथा कुष्ठ आदि उत्पन्न हो जाते हैं।

ज्ञातव्य—पारद के दोषों के फलों में भी भिन्नता है। जैसे रसेन्द्रसारसंग्रह ग्रन्थ में, नागदोष से कुष्ठ रोग और मल दोष से जड़ता (जकड़ाहट) का उत्पन्न होना लिखा है।

(रसस्य मुख्यतमा दोषास्तेषां फलञ्च)

विषं वह्निर्मलश्चेति दोषा मुख्यतमास्त्रयः ॥ १८ ॥

रसे मरणसन्तापमूर्छानां हेतवः क्रमात् ।

प्र०—पारदस्य मुख्यतमदोषाँस्तेषां फलञ्चाह विषमिति—रसे = पारदे येऽष्टौ नैसर्गिका महादोषाः—प्राक् प्रतिपादितास्तेषां मध्यात् विषवह्निमलाख्यास्त्रयो दोषा मुख्यतमाः = प्रधानतमाः सन्ति । ते चेमे क्रमात् = क्रमशः, मरणसन्तापमूर्छानां हेतवः = कारणानि सन्ति, अर्थात् पारदस्य विषदोषात्, मरणं = मृत्युः, वह्निदोषात् शरीरे सन्तापः, मलदोषाच्च मूर्च्छा जायते । मरणादिभयंकरफलवत्वादेतेषां मुख्यतमत्वमस्ति । अत्रानुष्टुप् छन्दः ॥१८॥

ज्ञातव्यम्—माधवेन श्लोकोऽयं रसरत्नाकररसरत्नसमुच्चयाभ्यामुद्धृतः, परन्तु तत्र मुख्यतमा 'इत्यस्य स्थाने नैसर्गिकाः' इति पाठ उपलभ्यते ।

पारद के प्रधानतम (अत्यन्तप्रधान) दोष और उनका फल

उ०—पारद में जो आठ स्वाभाविक महादोष माने गये हैं, उनमें से (१) विष दोष (२) वह्निदोष (३) मलदोष ये तीन प्रधानतम (अत्यन्त प्रधान) दोष हैं, ये तीनों दोष क्रम से मृत्यु, शरीर में सन्ताप (दाह) और मूर्च्छा उत्पन्न करने के कारण होते हैं, अर्थात् विषदोष युक्त पारद के खानेसे मृत्यु, वह्निदोषयुक्त पारद के खाने से शरीर में दाह (जलन) और मलदोषयुक्त पारद के खाने से मूर्च्छा उत्पन्न होजाती है। मृत्यु आदि भयङ्कर फल वाले होने से ही यह तीनों दोष अत्यन्त प्रधानदोष माने गये हैं ॥ १८ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक रसरत्नाकर और रसरत्नसमुच्चय से (अ० ११) उद्धृत किया है। परन्तु उनमें 'मुख्यतमाः' शब्द के स्थान में 'नैसर्गिकाः' पाठ मिलता है।

(रसस्य यौगिकौ दोषौ तयोः फलञ्च)

यौगिकौ नागवङ्गौ द्वौ तौ जाड्याध्मानकुष्ठदौ ॥१९॥

प्र०—पारदस्य यौगिकदोषौ तयोः फलञ्चाह—यौगिकाविति—पारदस्य नैसर्गिकानामष्टानां दोषाणां मध्यात् द्वौ नागवङ्गौ = नागवङ्गाख्यौ दोषौ यौगिकौ = नागवंगयोर्योगात्सम्पर्काज्जातौ कृत्रिमौ स्तः, तौ हि जाड्याध्मानकुष्ठदौ = जाड्याध्मानकुष्ठदौ स्तः, अत्रानुष्टुप् छन्दः ॥१९॥

ज्ञातव्यम्—श्लोकार्धोऽयं रसरत्नाकररसरत्नसमुच्चयाभ्यामुद्धृतो माधवेन ।

पारद के यौगिक दोष और उनका फल ।

उ०—पहिले बताये गये पारद (पारे) के स्वाभाविक आठ महादोषों में से दो नाग दोष और बङ्ग दोष यौगिक हैं, अर्थात् नाग (सीसा) तथा बङ्ग (रांगा) धातु के योग (मिश्रण, मिलावट) से उत्पन्न होने वाले हैं, यह दोनों शरीर में जड़ता (जकड़ाहट) आध्मान तथा कुष्ठ रोग को उत्पन्न करने वाले हैं।

ज्ञातव्य—माधव ने यह आधा श्लोक रसरत्नाकर और रसरत्नसमुच्चय (अ० ११) से उद्धृत किया है। पारद में नाग और बङ्ग का योग, खान में प्राकृतिक रूप से और बाजार में बेचने वाले लोभी व्यापारियों द्वारा होता है। प्राचीन समय से अधिकतर लोभी व्यापारियों द्वारा ही पारद में नाग और बङ्ग का मिश्रण (मिलावट) होता आया है। जैसे

कि स्वयं माधव ने भी इसी प्रथम अध्याय के ८२ वें श्लोक में लिखा है :—

मिश्रितौ चेद्रसे नागवङ्गौ विक्रयहेतुना ।
ताभ्यां स्यात्कृत्रिमो दोषः................ ॥

कुछ वैद्यों ने नाग और वङ्ग दोष को औपाधिक दोष संज्ञा दी है । यथा–औपाधिकौ द्वौ त्रपुनागसम्भवौ रसेन्द्रराजे कथयन्ति वैद्याः ।

(सप्तकञ्चुकाख्या औपाधिकदोषाः)

औपाधिकाः पुनश्चान्ये कीर्तिताः सप्तकञ्चुकाः ।
भूमिजो गिरिजो वार्जो द्वौ च द्वौ नागवङ्गजौ ॥२०॥

प्र०—सप्तकञ्चुकानाह-औपाधिका इति– अन्ये च पुनः सप्तकञ्चुकाः कञ्चुकाख्याः सप्तावरणरूपाः पर्पटीप्रभृतयः सप्तकञ्चुकाख्या दोषा औपाधिकाः = वणिग्भ्यः प्रवञ्चनार्थं मिश्रितैर्नागादिभिर्धातुभिः समुत्पन्नाः कीर्तिताः = कथिताः । एतेषां मध्ये प्रथमो दोषो भूमिजः, द्वितीयो गिरिजः तृतीयो वार्जः = जलजः, चतुर्थपञ्चमौ नागजौ, षष्ठसप्तमौ च दोषौ वङ्गजौ, एवं सप्तकञ्चुकाख्याः सप्तदोषा औपाधिका मताः । अत्रानुष्टुप् छन्दः ॥२०॥

ज्ञातव्यम्—श्लोकोऽयं रसरत्नाकरात् रत्नसमुच्चयाभ्यामुद्धृतो माधवेन, तत्र सप्तकञ्चुकानामयोनिर्दिष्टानि नामान्यपि प्रदर्शितानि ।

यथा—पर्पटी पाटिनी भेदी द्रावी मलकरी तथा ।
अन्धकारी तथा ध्वाङ्क्षी विज्ञेयाः सप्तकञ्चुकाः ॥
(रसरत्नसमु० अ० ११)

सात कंचुक (काँचली) नाम के सात औपाधिक दोष ।

उ०—और फिर सात आवरणरूप (१) पर्पटी (२)

पाटिनी (३) भेदी (४) द्रावी (५) मलकरी (६) अन्धकारी (७) ध्वाङ्क्षी, नाम के सात कंचुक (काँचली) दोष, लोभी तथा धूर्त व्यापारियों द्वारा पत्थर तथा नागादि धातु के मिला देने से उत्पन्न औपाधिक दोष कहलाते हैं. इन सात कंचुकों (काँचलियों) में से पहिला दोष भूमिज (मिट्टी (पृथ्वी) के सम्बन्ध से उत्पन्न), दूसरा गिरिज (पर्वत के सम्बन्ध से उत्पन्न), तीसरा वार्ज (जल के सम्बन्ध से उत्पन्न), चौथा तथा पाँचवा नागज (सीसा धातु के सम्बन्ध से उत्पन्न) और छठा सातवां दोष वङ्गज (रांगा धातु के मिलाने से उत्पन्न हुआ दोष) है, इस प्रकार पारद में से ये सात काँचली नाम के सात औपाधिक दोष कहलाते हैं।

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक, रसरत्नाकर और रसरत्नसमुच्चय (अ० ११) से उद्धृत किया है। वहाँ पर सात कंचुक (काँचलियों) दोषों के नाम भी गिनाये हैं। यथा—

पर्पटी पाटिनी भेदी द्रावी मलकरी तथा।
अन्धकारी तथा ध्वाङ्क्षी विज्ञेयाः सप्तकञ्चुकाः॥
(रसरत्नसमुच्चय, अ० ११)

कञ्चुकों (कांचलियों) के विषय में विभिन्न मत।

रसेन्द्रचूड़ामणि के कर्त्ता, आचार्य श्रीसोमदेव ने नागज और बङ्गज कांचलियों के भेदों के नाम भी बताये हैं और साथ में सात काँचलियों से युक्त पारद के खाने से शरीर में प्रत्येक काँचली से उत्पन्न रोगों का वर्णन भी किया है, रसप्रकाशसुधाकरकर्त्ता यशोधर ने, नाग और बङ्ग के सम्बन्ध से एक एक कँचुक दोष ही मानकर, उनके स्थान में ताम्र (तांबा) और लोहे धातु के सम्बन्ध से उत्पन्न एक कँचुक-दोष माना है जैसा कि आगे के २९ वें पृष्ठ के चित्र से प्रकट होजाता है।

संख्या	कंचुकों (कांचलियों का नाम)			उत्पन्न रोग का नाम	
	१ रसप्रकाश सुधाकर २ देवीशास्त्र	१ रसरत्नाकर २ रसरत्नसमुच्चय ३ आयुर्वेदप्रकाश	रसेन्द्राचूडामणि	१ रसरत्नाकर २ रसरत्नसमुच्चय ३ आयुर्वेदप्रकाश	रसेन्द्रचूडामणि
१	मृज्जः	भूमिजः	मृन्मयः अथवा पृथिवीकन्चुक	कुष्ठ	कुष्ठ (कोढ़)
२	शैलजः	गिरिजः	पाषाण कन्चुक	जाड्य	जाड्य (जकड़ाहट)
३	जलजः	वार्जः अथवा वारिजः	जलजः	वातसंघात	वली, पलित, खालित्य
४	नागजः	नागज· (प्रथम)	श्यामा	दोषाढयं	कामला,पाण्डु, महाकुष्ठ, उदर र ग,प्रमेह,श्वेतकुष्ठ(सफेदकोढ़)
५	शुल्वजः(ताम्रजः)	नागजः (द्वितीय,	कपालिका	,,	दद्रु (दाद) गजचर्म
६	वङ्गजः	वङ्गजः (प्रथम)	कपाली	,,	वीर्यहानि
७	अयोजः (लौहजः)	वङ्गजः (द्वितीय,	कालिका	,,	मर्मच्छेद वस्तिरुजा (मूत्राशय मे पीड़ा)

उ८—यथा—(१) रसप्रकाशसुधाकरे—

कञ्चुकाः सप्तसूतस्य कथयामि यथार्थतः ।
नामानि कथयाम्येषां देवीशास्त्रानुसारतः ॥
पारदे कञ्चुकाः सप्त........................ ।

(रसप्रकाशसुधाकर अ० १)

(२) रसेन्द्र चूड़ामणौ—

मृन्मयः कञ्चुकश्चैकः परः पाषाणकञ्चुकः ।
तृतीयो जलजे ज्ञेयो द्वौ द्वौ स्तो नागवङ्गयोः ॥
कपाली कालिका वंगे नागे श्यामा कपालिका ।
पयसो यादृशी सरा विज्ञातव्या कपालिका ॥
पञ्चवर्णा भवेच्छ्यामा कपाली सप्तवर्णिका ।
पृथ्वीकञ्चुकात्कुष्ठं जाड्यं पाषाणदोषतः ॥
वलीपलितखालित्यं वारिदोषात् प्रजायते ।
दद्रूँश्च गजचर्माणि करोत्येषा कपालिका ॥
कामलां पाण्डुरोगं च महाकुष्ठं तथोदरम् ।
प्रमेहं श्वेतकुष्ठं च श्यामा कुर्यात्तु कञ्चुका ॥
मर्मच्छेदं वस्तिरुजं काली कुर्यादसंशयम् ।
कपाली वै वीर्यहानिं कुरुते नात्र संशयम् ॥

(रसेन्द्रचूड़ामणि)

(३) रससंकेतकलिका में भी, इन सात काँचलियों का वर्णन है, यहाँ पर प्रथम का नाम भूमिज के स्थान पर भूजः लिखा है । यथा—

....भूजाद्याः सप्तकञ्चुकाः (रससंकेतकलिका, उल्लास १)

(४) योगरत्नाकर में-नाग आदि सात दोषों को कञ्चुक लिखा है और इनको औपाधिक दोष के स्थान में नैसर्गिक दोष माना है । यथा—

नागो बङ्गो मलो वह्निश्चाञ्चल्यं च गिरिर्विषम्।
पारदे कञ्चुकाः सप्त सन्ति नैसर्गिका इमे॥

कञ्चुकों (काँचलियों) की उत्पत्ति के विषय में प्राचीन तथा अवाचीन मत।

प्राचीन मतः-

रसरत्न समुच्चय आदि रस शास्त्रों में पारद तथा उसके दोष स्वरूप कञ्चुकों (काँचलियों) की उत्पत्ति का वर्णन पौराणिक ढंग से आलङ्कारिक भाषा में किया है। उसका सारांश यह है--

गंगा नदी के किनारे महादेवजी के वीर्य से उत्पन्न पारद के सौ योजन लम्बे पाँच कुएँ (कूप) थे। इनमें से दो कुओं के पारद को सेवन कर देवता और नाग मृत्यु और बुढ़ापे से मुक्त हो गये और फिर उन्होंने उन दोनों कुओं को मिट्टी और पत्थर से भर दिया (सम्भव है उस समय कोई भूकम्प (Earth queck अर्थक्वैक) आया हो, जिससे वे दोनों कुँए भर गये हों) जिससे वे व्यर्थ (बेकार) होगये हों। शेष तीन कुओं के पारद के सेवन से मनुष्य भी मृत्यु तथा रोग के दुःख से मुक्त होकर, देवताओं के समान आयु और बल वाले होने लगे। यह देख कर दुखी हुए ईर्ष्यालु इन्द्र ने महादेवजी की प्रार्थना की, जिससे सन्तुष्ट होकर महादेवजी ने इन्द्र की इच्छानुसार शेष तीनों कुओं के पारद को शाप देकर आवरण रूप सात कञ्चुक दोषों से युक्त कर दिया, तब से बिना संस्कार किये उस पारद से कोई लाभ नहीं होता है।

यथा--

एवंभूतस्य सूतस्य मर्त्यमृत्युगदच्छिदः।
प्रभावान्मानुषा ज्ञाता देवतुल्यबलायुषः ॥
तान् दृष्ट्वाऽभ्यर्थितो रुद्रः शुक्रेण तदनन्तरम्।
दोषैश्च कञ्चुकाभिश्च रसराजो नियोजितः ॥
तदाप्रभृति सूतोऽसौ नैव सिध्यत्यसंस्कृतः ॥

(रसरत्नसमुच्चय अ० २)

उ०—रसपद्धति की टीका में भी इस कथा का उल्लेख मिलता है, परन्तु वहां पर पारद के दो रूपों को ही कञ्चुक दोषयुक्त माना है। यथा—

एतदनन्तरं तौ इन्द्रप्रार्थनया रुद्रेण कञ्चुकादिदोषैश्चाभिशप्तौ कृतौ, तेनासंस्कृतात्सिद्धिर्नास्ति।

(रसपद्धति श्लो० ४ टीका)

आयुर्वेदप्रकाश में भी शुद्धसूत की परीक्षा के प्रकरण में इस कथा का संकेत मिलता है। यथा—

सप्तकञ्चुकाः सप्तावरणानि शिवशापाज्जातानि तद्विमुक्ततया शुद्धसूता बुधैः कथ्यते।

अर्वाचीनमत।

अर्वाचीन रासायनिक वैज्ञानिकों के मत से ये कञ्चुक औपाधिक दोष नहीं है, किंतु प्राकृतिक हैं, जिन खानों से पारद निकलता है वहाँ पर अथवा समीप में नाग तथा वङ्ग आदि धातु भी होती हैं, जो पारद में मिल जाती हैं। पारद में मिली हुई वे धातुयें जब आक्सिजन (oxygine) नाम की प्राण-

प्रदवायु को ग्रहण करती है, तब वायु के प्रवेश होने पर उनका कोई भाग फट जाता है और उस फटे हुए भाग की चूर्ण रूप में हुई धातुयें पारद को आवरण रूप में आवृत कर (ढक) लेती हैं और पारद में मिल जाती हैं, पारद में मिश्रित यह आवरण रूप धातु ही कञ्चुक कहलाती हैं। यथा—

Impure mercury when shaken with air yields a black powder, caused by the oxidation of the metallic impurities and the film of the oxide incloses a small globule of the liquid metal.

(Chemistry by H. E. Roscoe and C. Schorlemmer F. R. S.)

इसी अर्वाचीन मत को रसतरंगिणीकार ने निम्नलिखित श्लोकों में प्रकट किया है।

धातवो रससंश्लिष्टाः यदा विष्णुपदामृतम् ।
गृह्णन्ति हि तदा तेषां कश्चिद्भागोऽवशीर्यते ॥
ततश्चूर्णत्वमापन्ना रसमाच्छादयन्ति ते ।
तेनावरणसाम्येन धातवः सूतसङ्गताः ॥
कञ्चुकाख्यां भजन्तीति प्राच्यपाश्चात्यसम्मतिः ॥
(रसतरंगिणी तरंग ५ श्लो० ११।१२)

कंचुकदोषहरण ।

पारद को घृतकुमारी (ग्वारपाठा) चित्रक लाल सरसों कटेहरी, तथा त्रिफला के क्वाथ से ३ दिन खरल में घोटने से, पारद के दोषरूप यह सप्त कंचुक निकल जाते हैं। ऐसा स्वयं

माधव. ने आयुर्वेदप्रकाश के इसी प्रथम अध्याय के ६१ वें श्लोक में लिखा है । यथा—

कुमारिकाचित्रकरक्तसर्षपैः कृतैः कषायैर्बृहतीविमिश्रितैः ।
फलत्रिकेणापि विमर्दितो रसो दिनत्रयं सप्तमलैर्विमुच्यते ॥

विशिष्टज्ञातव्य—खान से निकले हुए पारद में ही यह सप्त कञ्चुक दोष होते हैं, परन्तु शुद्धहिंगुल से डमरूयन्त्र द्वारा ऊर्ध्वपातन करके निकाले गये पारद में यह सप्त कंचुक नहीं होते हैं । यथा—

अथवा हिङ्गुलात्सूतं ग्राहयेत्तन्निगद्यते ।
जम्बीरनिम्बुनीरेण मर्दितो हिङ्गुलो दिनम् ॥
ऊर्ध्वपातनयन्त्रेण ग्राह्यः स्यन्निर्मलो रसः ।
कञ्चुकै नार्गवङ्गाद्यै र्निर्मुक्तो रसकर्मणि ॥
विनाकर्माष्टकेनैव सूतोऽयं सर्वकर्म्मकृत् (रसेन्द्रसारसंग्रह)

(सप्तकञ्चुकदोषाणां फलम्)

भूमिजः कुरुते कुष्ठं गिरिजो जाडयमेव च ॥२१॥
बारिजो वातसंघातं दोषाढ्यौ नागवङ्गजौ ।
अतो दोषनिवृत्यर्थं रसः शोध्यः प्रयत्नतः ॥

प्र०—सप्तकञ्चुकदोषाणां फलमाह—भूमिज इति, भूमिजः=पृथ्वीकञ्चुको दोषः कुष्ठं कुरुते, गिरिजः=पाषाण-कञ्चुको जाडयं, वारिजः=जलजो वातसङ्घातं=वातरोगान् कुरुते, नागवङ्गजौ दोषाढ्यौस्तः बहुदोषजनकौस्तः, अतोऽस्माद्धे-तोर्दोषनिवृत्यर्थं=एषां सप्तकञ्चुकाख्यदोषाणां निवारणाय,

रसः पारदः प्रयत्नतः=यत्नपूर्वकं शोध्यः=शोधनीयः । अत्रानुष्टप् छन्दः ॥२१॥२२॥

सप्तकञ्चुक दोषों का फल ।

उ०—भूमिज कञ्चुक दोष, शरीर में कुष्ठ (क्लेद), गिरिज कञ्चुक दोष जड़ता (जकड़ाहट), वारिज कञ्चक वायु के रोग, नागज तथा वङ्गज कञ्चुक दोष अनेक प्रकार के रोगों को उत्पन्न करता है। इसलिये इन कञ्चुक दोषों को निकालने के लिये यत्नपूर्वक पारद का शोधन करना चाहिये ॥ २१-२२ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक रसरत्नाकर और रसरत्नसमुच्चय (अ० ११) से उद्धृत किया है। पारद के इन सात कञ्चुक दोषों का शोधन आयुर्वेदप्रकाश के इसी प्रथम अध्याय के ३वें श्लोक में लिखा है,जिसको पहले ३४वें पृष्ठ पर कंचुक की व्याख्या के अन्त में भी हमने लिख दिया है ।

(रसस्य द्वादश दोषाः)

द्वादशैते रसे दोषाः प्रोक्ता रसविशारदैः ।

पारदस्य द्वादशदोषानाह—द्वादशेति-रसविशारदैः=रसकर्मदक्षैराचार्यैः, रसे-पारदे, एते=पूर्वनिर्दिष्टा द्वादशदोषा प्रोक्ता कथिताः । तद्यथा—विषंवह्निर्मलश्चेतित्रयो मुख्यतमा दोषा द्वौ यौगिकौ नागवङ्गौ, औपाधिकाख्याः सप्तकञ्चुका दोषाः, इत्थं मिलित्वा द्वादशदोषा कथिताः । अत्रानुष्टप् छन्दः ।

पारद के बारह दोष।

उ०—पारद के संस्कार कर्म करने में चतुर आचार्यों ने पारद में यह दोष कहे हैं। विष, अग्नि, (वह्नि) और मल नाम के तीन प्रधानतम दोष, दो यौगिक नाग वङ्ग दोष तथा सात कंचुक दोष मिलाकर बारह दोष पारद में होते हैं। यथा-

३ मुख्यतम (प्रधानतम) दोष-१ विष, २ वह्नि, ३ मल
२ यौगिक दोष—१ नाग, वङ्ग।
७ कंचुक दोष—पर्पटी आदि सात कंचुक
——
१२ दोष

ज्ञातव्य—आचार्य माधवने यह आधा श्लोक, रसरत्नाकर और रसरत्नसमुच्चय (अ० ११) से उद्धृत किया है। अन्य रसशास्त्रों में भी पारद के इन बारह दोषों का वर्णन मिलता है। यथा—

१—युक्तं द्वादशभिर्दोषै यो हन्यात्पारदेश्वरम्।
युक्तं द्वादशभिर्दोषैर्यस्तु हन्याच्छिवात्मकम्॥
(रसेन्द्रचूड़ामणि)

२--द्वादशैव हि दोषाःस्युः.....
(रसप्रकाशसुधाकर, अ० १)

३—कुष्ठादीन् हि प्रकुर्वन्ति रसस्था द्वादशैव ते।
(रससंकेतकलिका)

(शोधितरसगुणाः)

शोधितोरसराजस्तु सुधातुल्यफलप्रदः।

दोषहीनो यदा सूतस्तदा मृत्युज्वरापहः ॥ २३ ॥
साक्षादमृतमप्येष........................

प्र०—शोधितपारदस्य गुणानाह—शोधित इति—शोधितो रसराजः पारदः, सुधातुल्यफलप्रदः अमृतसदृशफलदायकोऽस्ति, शोधने यदा सूतः पारदो दोषहीनः = दोषरहितो भवति, तदा एष मृत्युज्वरापहः = मृत्युवार्द्धक्यनाशनो रसायनरूपः, साक्षादमृतमपि = अमृततुल्यगुणोऽपि भवतीतिशेषः । अत्रानुष्टप्छन्दः ॥ २३ ॥

ज्ञातव्यम्—अस्यैवश्लोकार्धस्यानुवादरूपो रसतरङ्गिण्या निम्ननिर्दिष्टः श्लोकांशोऽस्ति—विशुद्धो रसराजस्तु सत्यं पीयूषसोदरः ।
(रसतरङ्गिणी, तरङ्ग, ५, श्लो० १५)

शोधितपारद का गुण ।

उ०—शुद्ध किया हुआ पारद (पारा) अमृत के समान फलदायक है, शुद्ध करने से जब पारद, दोषरहित हो जाता है. तब वह रसायन के समान मृत्यु तथा वृद्धावस्था (बुढ़ापा) को दूर करने वाला और साक्षात् अमृत के समान गुणकारी हो जाता है ॥ २३ ॥

ज्ञातव्य—रसतरङ्गिणी का निम्नलिखित आधा श्लोक, इसी श्लोक के पूर्वार्ध का अनुवादमात्र है —

विशुद्धो रसराजस्तु सत्यं पीयूषसोदरः । (रसतरंगिणी, तरंग ५, श्लोक १५)

(रसशोधनस्यावश्यकता)

........................दोषयुक्तो रसो विषम् ।
तस्मादोषनिवृत्यर्थं सहायैर्निपुणैर्भिषक् ॥२४॥

सर्वोपस्करमादाय रसकर्म समाचरेत्

प्र०—पारदशोधनस्यावश्यकतामाह–दोषइति-दोषयुक्तः = नागादिदोषयुक्तो रसः पारदः, विषं = विषंतुल्यो भवति, तस्माद्धेतोः, दोषनिवृत्यर्थं = पारदस्यनागादिदोष निवारणार्थं, निपुणैः = कुशलैः, सहायैः = सहायकैः परिचारकैः सहितो भिषक् वैद्यः सर्वोपस्कारं = सर्वसामग्रीमादाय = गृहीत्वा, रसकर्म = पारदशोधनकर्म, समाचरेत् = कुर्यात् । अत्रानुष्टुप् छन्दः ॥२४॥

ज्ञातव्यम्—अस्य श्लोकस्यैवानुवादरूपो रसतरङ्गिण्याः निम्ननिर्दिष्टः श्लोकोऽस्ति—

तस्मात्सूतविशुद्ध्यर्थं युक्तः सुपरिचारकैः ।
सर्वामादाय सामग्रीं रसशुद्धिं समारभेत् ।

(रसतरङ्गिणी, तरंग ५, श्लोक १६)

पारद के शोधन करने की आवश्यकता।

उ०—नाग आदि दोषसहित पारद, विष के समान हानिकारक होता है, इसलिये पारद के नाग आदि दोषों को दूर करने के लिये, चतुर सहायक सेवकों के सहित वैद्य, सम्पूर्ण आवश्यक सामग्री को लेकर पारद का शोधन कर्म प्रारम्भ करे ॥ २४ ॥

ज्ञातव्य—आयुर्वेदप्रकाश का यह श्लोक, रसरत्नसमुच्चय के निम्नलिखित श्लोक का रूपान्तर मात्र है ।

तस्मात्सूतविधानार्थं सहायैर्निपुणैर्युतः ।
सर्वोपस्करमादाय रसकर्म समारभेत् ॥

(रसरत्नसमुच्चय, अ० ११ श्लोक २६)

रसतरङ्गिणी का निम्नलिखित श्लोक, आयुर्वेदप्रकाश के इसी श्लोक का अनुवादमात्र है—

तस्मात्सूतविशुद्ध्यर्थं युक्तः सुपरिचारकैः ।
सर्वामादाय सामग्रीं रसशुद्धिं समारभेत् ॥
(रसतरङ्गिणी, तरङ्ग ५ श्लोक १६)

सर्वोपस्कर—खरल आदि सब सामग्री, पारदसंस्कार में आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना सफलता नहीं मिल मिल सकती है । यथा—

उपस्करं न यो वेत्ति तस्य सिद्धिः कथंभवेत् ।

(संस्कारार्थं रसग्रहणपरिमाणम्)

रसो ग्राह्यः शुभे काले पलानां शतमात्रकम् ॥२५॥
पंचाशद्वा तदर्धं वा दश पंचैकमेव च ।
पलादूने न कर्त्तव्यो रसे संस्कार उत्तमः ॥२६॥
बहुप्रयाससाध्यत्वात्फलं स्वल्पं यतो भवेत् ।

प्र०—संस्कारार्थं पारदग्रहणपरिमाणमाह-रस इति-शुभे काले = शुभतिथिनक्षत्रमुहूर्तसंवलितसमये पलानांशतमात्रकं = शत पलपरिमितः पारदः, वा = अथवा पञ्चाशत् पलमितः, तदर्धं = पंचविंशतिपलमितः, दशपलमितः, पंचपलमितः, एकपलपरिमितो वा रसः = पारदः संस्कारार्थं ग्राह्यः बहुप्रयाससाध्यत्वात्ः अत्यधिक-श्रमसाध्यत्वाद्धेतोः, पलादूने = पलान्न्यूने रसे, उत्तमः संस्कारो न कर्त्तव्यः, यतः = यस्मात्कारणात् इत्थं बहुश्रमसाध्ये पलान्न्यूनपारद-संस्कारे स्वल्पमल्पं, स्तोकं, फलं = लाभो भवेत् ॥ अत्रानुष्टुप् छन्दः ॥ २५-२६ ॥

ज्ञातव्यम्—श्लोकाविमौ रसमञ्जरीतो रूपान्तरितौ माधवेन, किंचित्पाठान्तरेण रसेन्द्रसारसंग्रहेऽप्युपलभ्येते ।

अनयोरेवश्लोकयोरनुवादरूपौ रसतरङ्गिण्या निम्नलिखित-श्लोकौ— पलानां शतकंग्राह्यम्.......
बहुप्रयाससाध्यत्वात्.......

(रसतरंगिणी, तरंग ५ श्लोक १७–१८)

संस्कार करने के लिये पारदग्रहण करने का परिणाम ।

३०—शुभ तिथि, नक्षत्र तथा मुहूर्तयुक्त समय में, १०० पल, ५० पल, २५ पल, १० पल, ५ पल अथवा १ पल पारद संस्कार के लिये लेना चाहिये, पारद के संस्कारों के बहुत परिश्रम से साध्य होने के कारण, पारद के उत्तम संस्कार के लिये एक पल से कम परिमाण में पारद नहीं लेना चाहिये,क्योंकि एक पल से कम पारद का संस्कार करने में बहुत कम लाभ होता है ॥ २५–२६ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह दोनों श्लोक, रसमञ्जरी के निम्नलिखित श्लोकों से रूपान्तरित किये हैं—

रसराजं समादाय पलानां शतमात्रकम् ।
पञ्चाशत्पञ्चविंशद्वा दश पञ्चैकमेव वा ॥
पलादूने न कर्त्तव्यः संस्कारो रससिद्धये ।

यह दोनों श्लोक, कुछ पाठान्तर से रसेन्द्रसार संग्रह में भी विद्यमान हैं ।

रसतरङ्गिणी के निम्नलिखित श्लोक, आयुर्वेदप्रकाश के इन्हीं दोनों श्लोकों के अनुवादमात्र हैं—

पलानां शतकं ग्राह्यं तदर्धार्धमथापि वा ।
पलानां दशकं वापि पञ्चकं वा पलोन्मितम् ॥

पलान्न्यूनो न संग्राह्यः संस्कारार्थं रसो बुधैः ।
बहुप्रयाससाध्यत्वाल्लाभाभावाच्च निश्चितम् ॥
(रसतरङ्गिणी, पंचमतरंग, श्लो० १७।१८)

(रससंस्कारे बलिपूजादिविधानं शुभमुहूर्त्त शोधनञ्च)

सम्पूज्य श्रीगुरुं कन्यां बटुकं च गणाधिपम् ॥२७॥
योगिनीं क्षेत्रपालाँश्च चतुर्धा बलिपूर्वकम् ।
* ततस्तु निभृते स्थाने सुमुहूर्ते विधोर्बले ॥२८॥
सुदिने शुभनक्षत्रे रसशोधनमाचरेत् ।

प्र०—पारदसंस्कारे बलिपूजादिविधानं शुभमुहूर्तशोधनञ्चाह—सम्पूज्येति-वैद्यः सुदिने शुभनक्षत्रे विधोर्बले चन्द्रबलयुते सुमुहूर्ते शुभनक्षत्रे, श्रीगुरुम् = आचार्यं, कन्यां, बटुकं, गणाधिपं = गणेशं, योगिनीं, क्षेत्रपालान् = देवताविशेषाँश्च चतुर्धा बलिपूर्वकं = चतसृषु दिक्षु चतुर्धा बलिप्रदानपूर्वकं सम्पूज्य = अर्चयित्वा, तदस्तदनन्तर निभृते स्थाने = एकान्तस्थाने, रसशोधनं = पारदशोधनमाचरेत् कुर्यात् । अत्रानुष्टुप् छन्दः ॥२७-२८॥

उ०—वैद्य, शुभ दिन शुभ नक्षत्र और चन्द्रमा के बल से युक्त शुभमुहूर्त में, गुरु (आचार्य) कन्या, बटुकभैरव, गणेश तथा क्षेत्रपाल देवताओं को चारों दिशाओं में बलि देकर और पूजा करके फिर एकान्त स्थान में पारद (पारे) का शोधन कर्म प्रारम्भ करे ॥२७॥२८॥

---

* सतं 'रहस्यनिलये' इति पाठान्तरं रसेन्द्रचिन्तामणौ ।

ज्ञातव्य—माधव ने यह डेढ़ श्लोक, रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० ३.६।७) से, और शेष आधा श्लोक, रसरत्नसमुच्चय (अ० ११) से उद्धृत किया है।

(अघोरमन्त्रेण रसपूजनम्)

अघोरेण च मन्त्रेण रसं प्रक्षाल्य पूजयेत् ।
स्वेदनादिमुखान् पश्चात्संस्कारान् समाचरेत् ॥२९॥

(अघोरमन्त्रः)

'अघोरेभ्यऽथोघोरेभ्यः' इत्यादि वैदिकमन्त्रः ।

प्र०—अघोरमन्त्रेण रसपूजनमाह-अघोरेणेति-अघोरेण = अग्रेविनिर्दिष्टेन "अघोरेभ्योऽथघोरेभ्यः," इत्यादिरूपेण मन्त्रेण = वैदिकरक्षामन्त्रेण रसं = पारदं, प्रक्षाल्य पूजयेत् = अर्चयेत्, पश्चात् = तदनन्तरं च स्वेदनादिमुखान् = स्वेदनादिप्रभृतीन् संस्कारान् समाचरेत् = कुर्यात् । अत्रानुष्टुप्छन्दः ॥ २६ ॥

अघोराख्यमन्त्रमाह—अघोरेभ्योऽथघोरेभ्यो घोराघोरतरेभ्यश्च । सर्वतः सर्वसर्वभ्यो नमस्ते रुद्ररूपिभ्यः ॥

ज्ञातव्यम्—इति वैदिको रक्षामन्त्रो रसपूजने प्रयुज्यते । मन्त्रोऽयं रसेन्द्रसारसंग्रहादिष्वप्युपलभ्यते ।

अघोरमन्त्र द्वारा पारद का पूजन ।

उ०—आगे बताये गये 'अघोरमन्त्र' से पारद का प्रक्षालन कर पूजा करे और फिर स्वेदन आदि संस्कारों को करें।

अघोरमन्त्र ।

अघोरेभ्योऽथघोरेभ्यो घोराघोरतरेभ्यश्च ।

सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपिभ्यः ॥

यह अघोरमन्त्र, वैदिक रक्षामन्त्र है, जो पारद के पूजन कार्य में प्रयुक्त होता है।

ज्ञातव्य—यह 'अघोर मन्त्र' रसेन्द्रसारसंग्रह आदि रसग्रन्थों में भी मिलता है।

(खल्वलक्षणम्)

खल्वो लोहमयः श्रेष्ठ तस्मात्तस्माच्छ्रेष्ठस्तु सारजः।
कान्तलोहभवस्तस्मात्, मर्दकश्च तथाविधः ॥३०॥
अभावे लोहखल्वस्य स्निग्धपाषाणजः शुभः।
तादृशस्वच्छसुश्लक्ष्णमर्दकेन समन्वितः ॥३१॥

प्र० —खल्वलक्षणमाह—खल्व इति—पारदसंस्कारकर्मादिषु लोहमयः=लोहनिर्मितः, खल्वः श्रेष्ठः=उत्तमः, तस्मात् खल्वात् सारजः=तीक्ष्णलौहनिर्मितः श्रेष्ठः, तस्मादपि च कान्तलोहभवः =कान्तलोहनिर्मितः श्रेष्ठः, मर्दकः=घर्षकश्च तथाविधः-खल्वनिर्मापकलौहनिर्मितः श्रेष्ठः। लोहखल्वस्याभावे, तादृश स्वच्छसुश्लक्ष्णमर्दकेन = खल्वसदृशस्वच्छस्निग्धपाषाणनिर्मितघर्षकेण समन्वितः=युक्तः स्निग्धपाषाणजः=मसृणपाषाणनिर्मितः खल्वः शुभो मतः, रसकर्मसाधकैरितिशेषः। अत्रानुष्टुप् छन्दः ॥३०॥३१॥

ज्ञातव्यम्—रसार्णवरसरत्नसमुच्चयादिषुशास्त्रेषु खल्वलक्षणभेदविषये बहुप्रपञ्चितमत्र तु माधवेन सारभूतमेव वर्णितम्।

खरल का लक्षण।

३०—पारद के संस्कार आदि कार्य में साधारण लोह का खरल उत्तम होता है, उससे फौलाद (तीक्ष्ण) लोह का बना हुआ उत्तम होता है, और उससे भी कान्त लोह से बना हुआ खरल उत्तम होता है; और जिसप्रकार के लोह का खरल बना हुआ हो उसी प्रकार के लोह से बना हुआ घोटने का मूसल उत्तम होता है, लोह के खरल के अभाव में, गढ़े आदि से रहित, चिकने पत्थर से बना हुआ खरल, शुभ माना गया है। इस खरल का मूसल भी साफ़ तथा चिकने पत्थर से बना हुआ होना चाहिये ॥ अ० ३१ ॥

ज्ञातव्य—आयुर्वेदप्रकाश के खरल का यह लक्षण, रसेन्द्रचिन्तामणि के (अ० ३।७–८) निम्नलिखित श्लोक का रूपान्तरमात्र है।

खल्वे पाषाणजे लौहे सुदृढे लौहसम्भवे।
तादृशस्वच्छमसृणचतुरङ्गुलमर्दके ॥

रसार्णव रसरत्नसमुच्चय, रसेन्द्रचूड़ामणि आदि रसशास्त्रों में खरल के भेद तथा लक्षण विस्तार पूर्वक मिलते हैं, पत्थर, लोह तथा कान्तलौह के खरलों में कान्तलौह से बना हुआ खरल उत्तम होता है, तथा उसमें संस्कृत किया गया पारद, करोड़ (कोटि) गुना उत्तम होता है। यथा—

(१) मृन्मये लोहपाषाणे ह्ययस्कान्तमयेऽथवा। (रसार्णव)
(२) कृतःकान्ता यसा सोऽयं भवेत्कोटिगुणोरसः॥

(रसरत्नसमुच्चय, अ० ६।८७)

स्फटिक तथा कांस्यादि का भी खरल होता है। यथा—

पाषाणे स्फटिके वाऽथ मुक्ताशैलमयेऽथवा ।
काचमयोऽपि क्वचित्.......   (रसकामधेनुः)

आढमल्ल ने, शार्गंधरसंहिता की दीपिका टीका में ताम्र (तांबे) के खरल का भी निर्देश किया है। यथा— खल्वभाजनं, तच्च त्रिविधं, पाषाणखल्वं, लोहखल्वं, ताम्रखल्वं च।

पत्थर का खरल ।

चिकने, भारी तथा दृढ़, नीले अथवा काले पत्थर का खरल बनता है, आज कल उरदिया पत्थर, सङ्गमरमर, स्याह-मूसा और तांमडा पत्थर आदि कई प्रकार के पत्थरों के खरल सवाई माधोपुर (जयपुर स्टेट) तथा गया आदि में बनते हैं।

मर्दकश्चिपिटोऽधस्तात्सुग्राह्यश्च शिखोपरि ।
अयं तु वर्तुलः खल्लो मर्दने ऽतिसुखप्रदः ॥
(रसरत्नसमु० अ० ६)

वर्तुल (गोल) खरल का आधुनिकप्रमाण निम्नलिखित है- वर्तुल खरल, १२ अङ्गुल चौड़ा, ६ अंगुल नीचा, ११ अंगुल ऊँचा, और २ अंगुल मोटा होता है, इसका मूसल, १५ अङ्गुल लम्बा होता है। यथा—

विस्तारे तपनांगुलः समतलो नीलाब्जतुल्यप्रभः ।
निम्नत्वे च नवांगुलः सुमसृणो रुद्रांगुलोच्छ्रायवान् ॥
भित्या द्व्यङ्गुलसंमितः खलु तथा चेद्रांगुलो घर्षकः ।
खल्वोयं खलु वर्तुलो निगदितः सूतादिसिद्धिप्रदः ॥
(रसतरङ्गिणी, तरङ्ग ४)

(२) द्रोणीरूप (किश्तीनुमा) खरल।

द्रोणीरूप (किश्तीनुमा) खरल, १० अङ्गुल ऊँचा, १६ अङ्गुल लम्बा, १० अङ्गुल चौड़ा, तथा ७ अङ्गुल गहरा होता है और उस की भीत (दीवारें), २३ अङ्गुल चौड़ी होनी चाहिये, इसका मूसल १२ अंगुल लम्बा होता है। यथा—

उत्सेधे च दशांगुलःखलु कलातुल्यांगुलायामवान्।
विस्तारेण दशांगुलो मुनिमितै र्निम्नस्तथैवांगुलैः॥
पाल्यां द्व्यंगुलविस्तरश्च मसृणोऽतीवार्द्ध चन्द्रोपमो।
घर्षो द्वादशकांगुलश्च तदयं खल्वोमतः सिद्धये॥

(रसरत्नसमु० अ० ६। ८१)

रसेन्द्रचूड़ामणि में इसका कुछ छोटा आकार बतलाया है। यथा—

उत्सेधेन नवांगुलं शशिकलासंख्यागुलं दैर्घ्यतो
विस्तारेण नवांगुलं रसमितै र्निम्नं तथैवांगुलैः।
कंठे द्व्यंगुलसंमितं सुमसृणं द्रोणार्धयन्त्रोपमं-
घर्षं चैव दशांगुलं तलमिद खल्वाख्ययन्त्रं वदेत्॥

द्रोणीरूप (किश्तीनुमा) खरल का आधुनिकप्रमाण निम्नलिखित है—

द्रोणीरूप खरल-७ अंगुल ऊँचा, १६ अगुल लम्बा, १२ अंगुल चौड़ा होताहै, इसकी दीवाल (भीत) की चौड़ाई २ अंगुल होती है, और इसका मूसल। १२ अंगुल लम्बा होता है। तथा-

उत्सेधे तुरगाङ्गुलः खलु कलातुल्याङ्गुलश्चायतो
विस्तारे तपनाङ्गुलश्च मसृणो भित्या च वै द्व्यङ्गुलः।
घर्षः सूर्यसमांगुलः सुविशदो लोहादिभिर्निर्मितः
खल्वोऽयं रससिद्धिकृन्निगदितो द्रोणीनिभोऽत्युत्तमः॥

(रसतरङ्गिणी, तरङ्ग ४)

उ०—रसरत्नसमुच्चय में दो प्रकार के खरलों का वर्णन है ।

(१) १६ अंगुल ऊँचा, ६ अंगुल चौड़ा और २४ अंगुल लम्बा पत्थर का खरल बनवावे, इसका मूसल १२ अंगुल का होना चाहिये ।

अथवा—

(२) २० अंगुल लम्बा और दस अंगुल ऊँचा पत्थर का खरल बनवाओ । यथा—

खल्लयोग्या शिला नीला श्यामा स्निग्धा दृढ़ा गुरुः ।
षोडशांगुलकोत्सेधा नवांगुलकविस्तरा ॥
चतुर्विंशांगुला दीर्घा घर्षणी द्वादशाङ्गुला ।
विंशत्यङ्गुलदीर्घा वा स्यादुत्सेधेदशाङ्गुला ॥
खल्लप्रमाणं तज्ज्ञेयं श्रेष्ठं स्याद्रसकर्मणि ॥

खरल के दो भेद ।

वास्तव में खरल दो प्रकार के होते हैं—(१) वर्तुल (गोल), (२) द्रोणीरूप (किश्तीनुमा) । यथा—

खल्लयन्त्रं द्विधा प्रोक्तं रसतन्त्रे विशेषतः ।
प्रथमं वर्तुलाकारं द्रोणीरूपं द्वितीयकम् ॥

(रसतरङ्गिणी, तरङ्ग ४, श्लो० ४५)

(१) वर्तुल (गोल) खरल—

वर्तुल (गोल) खरल १२ अङ्गुल चौड़ा, ४ अङ्गुल गहरा होता है, इसकी मूसली नीचे से चपटी तथा ऊपर से अच्छी तरह पकड़ने के योग्य हो । यथा—

द्वादशाङ्गुलविस्तारः खल्लोऽति मसृणोपलः ।
चतुरङ्गलनिम्नश्च मध्येऽतिमसृणीकृतः ॥

(रससंस्कार संख्या)

अष्टादशैव संस्कारा ऊनविंशतिकाः क्वचित् ।
सम्प्रोक्ता रसराजस्य वसुसंख्याः क्वचिन्मताः॥३२॥

पारदसंस्कारों की संख्या ।

प्र०—पारदसंस्काराणां संख्यामाह—अष्टादशेति रसरत्नसमुच्चयादिषु, रसराजस्य = पारदस्य, अष्टादशैव = अष्टादशसंख्याका एव संस्काराः सन्ति क्वचिद् 'रसेन्द्रचिन्तामण्यादौ' = ऊनविंशतिका ऊनविंशतिसंख्याकाः सम्प्रोक्ताः = कथिताः,क्वचिद्रसपद्धत्यादौ वसुसंख्याः = अष्टौ संस्कारा मताः॥ अत्रानुष्टप्छन्दः ॥३२॥

उ—रसरत्नसमुच्चय आदि में, अठारह संस्कार तथा किसी किसी रसेन्द्रचिन्तामणि आदि में, उन्नीस संस्कार कहे हैं, और किसी किसी रसपद्धति आदि ग्रन्थ में पारद के आठ संस्कार माने गये हैं।

(रसस्याष्टादशसंस्काराः)

स्यात्स्वेदनं तदनु मर्दनमूर्च्छने च,
स्यादुत्थितिः❀ पतनरोधनियामनानि ।
सन्दीपनं गगनभक्षणमानमत्र,
संचारणं तदनु गर्भगताद्रुतिश्च ॥३३॥

❀ उत्थापनम्-इति पाठान्तरं मुद्रितरसरत्नसमुच्चये ।

बाह्यद्रुतिः सूतकजारणा स्या,
द्रागस्तथा सारणकर्म पश्चात् ।
संक्रामणं वेधविधिः शरीर,
योगस्तथाऽष्टादशधाऽत्र कर्म ॥३४॥

प्र०--पारदस्याष्टादशसंस्कारानाह–स्यादिति = अत्र रस-शास्त्रे स्वेदनादिभेदेनाष्टादशधा कर्म = अष्टादशरूपं पारद संस्कारकर्मास्ति । अत्र त्रयस्त्रिंशत्तमे श्लोके बसन्ततिलकावृत्तं, चतुस्त्रिंशत्तमे चेन्द्रवज्रावृत्तमस्ति ॥३३॥३४॥

ज्ञातव्यम्—श्लोकाविमौ रसरत्नसमुच्चयादुद्धृतौ माधवेन ।

पारद के अठारह संस्कार ।

उ०—इस रसरत्नसमुच्चय ग्रन्थमें–(१) स्वेदन (२) मर्दन (३) मूर्च्छन (४) उत्थिति (उत्थापन) (५) पतन (ऊर्ध्वपातन, अधःपातन, तिर्यक् पातन), (६) रोध (रोधन), (७) नियामन (८) सन्दीपन (९) गगनभक्षणमात्र (१०) संचारण (चारण) (११) गर्भद्रुतिः (१२) बाह्यद्रुतिः (१३) जारण (१४) राग (रञ्जन) (१५) सारण (१६) संक्रामण (क्रामण) (१७) वेधविधि (१८) शरीर योग (पारद भक्षण, पारद सेवन)। ये अठारह संस्कार हैं। इनमें से पहिले आठ, चिकित्साकार्य में और शेष दस संस्कार, स्वर्णादि निर्माण (रसायन) के कार्य में आते हैं।

ज्ञातव्य—माधव ने यह दोनों श्लोक, वाग्भटरचित रसरत्नसमुच्चय (अ० ११ श्लोक १५, १६) से उद्धृत किये हैं।

रसरत्नसमुच्चय, रसप्रकाशसुधाकर, रसहृद तथा रसमार्तण्ड आदि कई रसग्रन्थों में भी पारद अठारह संस्कारों का उल्लेख मिलता है। यथा—

(१) रसरत्नसमुच्चयेऽयत्रापि—

दशाष्टसंस्कृतैः सिद्धो देहं लोहं करोति सः ॥ (रसरत्न समुच्चय, अ० १, श्लोक ७१) ॥

(२) रसप्रकाशसुधाकरे–

स्वेदनं मर्दनं चैव मूर्च्छनं स्यात्तदुत्थितम् ।
पातनं रोधनं सम्यङ्नियमश्चाथ दीपनम् ॥
उ०-तथाऽभ्रकग्रासमानं चारणं च क्रमेण हि ।
गर्भद्रुति र्बाह्यद्रुति द्रुतिजारणकं तथा ॥
रञ्जनं सारणं प्रोक्तं कामणं वेधकर्म च ।
सेवनं पारदस्याथ कर्माण्यष्टादशैव हि ॥

(रसप्रकाशसुधाकर, अ० १)

(३) रसहृदयेऽपि—

स्वेदनमर्दनमूर्च्छनमुत्थापनपातरोधनाख्याः ।
नियमश्च दीपनमथग्रासप्रमाणमथचारणविधानं च ॥
गर्भद्रुतिबाह्यद्रुतिजारणरञ्जनसारणं च ।
क्रामणवेधनभक्षणमष्टादशकर्मसमुदायः ॥

(४) रसमार्तण्डमें कुछ संस्कारों के नामान्तर मिलते हैं। यथा रसमार्तण्डे—

पट्टसंस्कारसञ्ज्ञस्तु संस्कारः प्रथमो मतः ।
मलापकर्षणं स्वेदः शुद्धि र्मर्दनधावने ॥
मूर्च्छनोत्थापने तिर्यगूर्ध्वाधः पातनं शुचिः ।
वीर्यानयनसंस्कारो नियामश्चनिरोधनम् ॥

दीपनं लेलिहानं च संमुखीकरणं तथा ।
इत्थं हि संस्कृतः सूतः सिद्धये देहलोहयोः ॥

(५) रससंकेतकलिकायाम्—रससंकेतकलिका में संस्कारों की केवल संख्यामात्र ही लिखी है, नाम नहीं लिखे हैं । यथा—

तेनाष्टदशसंस्कारा उक्ता ज्ञैर्दोषमुक्तये ।
(रससंकेतकलिका, उल्लास १)

(रसस्याष्टौसंस्काराः)

रसपद्धत्याम्—

स्वेदोमर्दनमूर्च्छनोत्थिति ततः पातोऽपि भेदान्वितो,
रोधः संयमनं प्रदीपनमिति स्पष्टाष्टधा संस्कृतिः ।
अस्याः सर्वरसोपयोगिकतया त्वन्या न विन्यस्यते,
ग्रन्थेऽस्मिन्प्रकृतोपयोगविरहाद्विस्तारभीत्याऽथवा॥३५॥

प्र०--रसपद्धतिकारमतेन पारदस्याष्टौसंस्कारानाह-- स्वेद इति, स्वेदः = स्वेदनं, मर्दनं, मूर्च्छनं, उत्थितिः = उत्थापनं, भेदान्वितः = ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्भेदसहितः ऊर्ध्वपातनम्, अधःपातनं, तिर्यक्पातनमिति, रोधः = रोधनं, बोधनं वा, संयमनं = नियमनं, नियामनं वा, प्रदीपनं = दीपनम्, इत्यष्टधा = अष्टविधा, संस्कृतिः = जात्यभिप्रायेणैकवचनम् संस्कार इत्यर्थः, स्पष्टा, अस्याः = स्वेदनादिरूपाया अष्टविधायाः संस्कृत्याः, एतेषामष्टसंस्काराणा मित्यर्थः, सर्वरसोपयोगिकतया = रसभस्मादौ सर्वत्रोपयोगात्, अस्मिन् रसपद्धतिनाम्नि ग्रन्थे मया रसपद्धतिकारेण विन्यासः कृतः, प्रकृतोपयोगविरहात् अथवा विस्तारभीत्या = विस्तारभयेन, अन्या अवशिष्टगगनभक्षणमानादि दशसंस्काररूपा संस्कृतिः =

शेषा दशसंस्कारा इत्यर्थः, न विन्यस्यते, अन्ये संस्कारा अत्र नो· च्यते इत्यर्थः। अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥२५॥

पारद के आठ संस्कार।

३०—रसपद्धतिकार का मत--पारद के (१) स्वेद (स्वेदन) (२) मर्दन (३) मूर्च्छन (४) उत्थिति (उत्थापन (५) पातः (पातन, १ ऊर्ध्वपातन २ अधःपातन ३ तिर्यक् पातन) (६) रोध (रोधन अथवा बोधन) (७) संयमन (नियमन अथवा नियामन) (८) प्रदीपन (दीपन) यह आठ संस्कार भली भाँति होते हैं, यह पारद की भस्म बनाने आदि सब में उपयोगी होने से, इस रसपद्धति ग्रन्थ में लिखे गये हैं, शेष गगनभक्षणमान आदि दस पारद संस्कार, यहाँ उपयोगी न होने के कारण अथवा ग्रन्थ विस्तार के भय से इसमें नहीं लिखे जाते हैं।

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक, रसपद्धति (श्लोक सं० ५) से उद्धृत किया है। इस श्लोक में वर्णित इन आठ संस्कारों से संस्कृतपारद का ही चिकित्सा में व्यवहार करना चाहिये, जैसा कि अन्य रसग्रन्थों में भी लिखा है। यथा...

१-इत्यष्टौ रससंस्काराः कर्त्तव्याः प्रथमं बुधैः।
ततः प्रयोज्यो यत्नेन रसो निखिलकर्मसु ॥
(रुद्रयामले)

२-संस्वेदनं मर्दनमूर्च्छनेचोत्थापनं पातनबोधने च।
नियामनं दीपनमेव चाष्टौ पूर्वं कृताः कर्मणि सूतकस्य॥

३-अष्टौ च रससंस्कारा द्रव्ये रसायने समाः।
एते प्रथमं कार्याः स्युःपश्चात्सर्वत्र योजयेत्॥

वाग्भटोऽपि—

इत्यष्टौ सूत संस्काराः समा द्रव्ये रसायने ।
+शेषा द्रव्योपयोगित्वान्न ते वैद्योपयोगिनः ॥३६॥

प्र०—अष्टसंस्कारविषये वाग्भटस्य सम्मतिमप्याह-इतीति = इति = स्वेदनाद्या:, अष्टौ सूतसंस्काराः = पारदसंस्काराः, द्रव्ये = सुवर्णादिनिर्माणे, लोहसिद्धौ, रसायने = नूतन रसादिधातूत्पादने, देहसिद्धावित्यर्थः समाः = तुल्याः, शेषाः = गगन भक्षण मानाद्यादशसंस्काराः, द्रव्योपयोगित्वात् = सुवर्ण रजतादि निर्माणोपकारकत्वात्, ते वैद्योपयोगिनः = चिकित्साकर्मण्यनाव-श्यकत्वाद् भिषजामुपकारका न सन्ति: अत्रानुष्टुप् छन्दः ॥३६॥

वाग्भट का मत ।

स्वेदन आदि यह आठ संस्कार, सुवर्णादिद्रव्यनिर्माण रूप लोहसिद्धि (धातुवाद कीमियागिरी) और रसायन (रस आदि नवीनधातुनिर्माण रूप देहसिद्धि) में तुल्य हैं । गगनभक्षणमान आदि शेष दस पारद संस्कार सुवर्णादि द्रव्य निर्माण करने में उपयोगी होने से वैद्यों के उपयोगी नहीं हैं, क्योंकि वे चिकित्सा कार्य में उपयोगी न होने से वैद्यों के उपयोगी नहीं हैं ॥३६॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक, रसरत्नसमुच्चय (अ० ११) से उद्धृत किया है । रसप्रकाशसुधाकरकर्त्ता भी वाग्भट के मत को मानते हैं ।

+ कार्यास्ते प्रथमं शेषा नोक्ताः द्रव्योपयोगिनः इति पाठान्तरं रसरत्नसमुच्चये ।

यथा—सूतस्याष्टौ च संस्काराः कथिता देहकर्मणि।
तथा च दश कर्माणि देहलोहकराणि हि ॥
(रसप्र० सु० अ० १)

(रसस्योनविंशतिसंस्काराः)

अथोनविंशतिकर्म्माणि यथा-स्वेदनमर्दनमूर्च्छनोत्थापनपातनबोधनियमनसंदीपनानुवासनगगनादिग्रासप्रमाणचारणगर्भद्रुतिबाह्यद्रुतियोगजारणरञ्जनसारणक्रामणवेधनभक्षणाख्या ऊनविंशतिसंस्काराः सूतसिद्धिदा भवन्ति, दीपनान्ता अष्टौ संकारा वा देहसिद्धिदा भवन्ति ॥ ३७ ॥

प्र०—पारदस्योनविंशतिसंस्कारानाह-स्वेदनेति-स्वेदनादिभक्षणान्ता ऊनविंशतिसंस्काराःसूतसिद्धिदाः = पारदसिद्धिदायका भवन्ति, दीपनान्ताः = स्वेदनादिदीपनान्ताः अष्टौ संस्कारा वा, देहसिद्धिदाः = चिकित्साकर्मणिप्रयुज्यमानत्वाद् देहसिद्धि प्रदा भवन्ति ॥३७॥

ज्ञातव्यम्—एष पाठो रसेन्द्रचिन्तामणित उद्धृतोमाधवेन, परन्तु मुद्रितपुस्तकेषु किंचित् क्रमभेदेन नामान्तराणि दृश्यन्ते।

अत्र रसरत्नसमुच्चयनिर्दिष्टसंस्कारापेक्षया अनुवासनाख्यः संस्कारोऽधिकोऽस्ति स च बोधनापरपर्यायस्य रोधनस्य भेद एवेत्यष्टादशैव संस्कारा इति सर्वं चतुरस्रम् ।

पारद के उन्नीस संस्कार।

उ०—अब पारद के उन्नीस संस्कार लिखते हैं। (१) स्वेदन, (२) मर्दन, (३) मूर्च्छन, (४) उत्थापन, (५) पातन

(६) बोधन (रोधन), (७) नियमन, (८) सन्दीपन, (९) अनुवासन, (१०) गगनादिग्रासप्रमाण, (११) चारण, (१२) गर्भद्रुति, (१३) बाह्यद्रुतियोग, (१४) जारण, (१५) रञ्जन, (१६) सारण, (१७) क्रामण, (१८) वेधन (१९) भक्षण। यह उन्नीस संस्कार पारद के सिद्धिदायक होते हैं, अथवा स्वेदन से दीपन पर्यन्त पारद के ८ संस्कार, चिकित्सा में प्रयुक्त उपयोगी होने से देहसिद्धि प्रदान करते हैं ॥३७॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह पाठ, रसेन्द्रचिन्तामणि से उद्धृत किया प्रतीत होता है, परन्तु वर्तमान समय में मुद्रित रसेन्द्रचिन्तामणि में कुछ भिन्न क्रम से पारद संस्कारों के नाम दिये हैं जैसे—

मर्दनमूर्च्छनोत्थापन स्वेदनपातन..........

मुद्रित रसेन्द्रचिन्तामणि में इस प्रकार स्वेदन को चतुर्थ संस्कार माना है और शेष क्रम समान ही है।

रसरत्नसमुच्चय की अपेक्षा यहां पर एक 'अनुवासन' संस्कार अधिक मान कर उन्नीस संस्कार माने गये हैं, परन्तु वास्तव में यह अनुवासन, बोधन (रोधन) का भेदमात्र ही है, इसलिये वह उसी में समाविष्ट होने से पृथक् नहीं है।

यथा- १—अनुवासनस्यापि रोधन एवान्तरभावः।

(रसकामधेनु पृष्ठ ३२४)

२—अनुवासनमपि रोधभेद एव ।

(रसकामधेनु पृष्ठ ३४५)

इस प्रकार अनुवासन संस्कार का रोधन (बोधन) संस्कार में अन्तर्भाव होजाने से पारद के अठारह संस्कार ही युक्तियुक्त हैं।

(स्वेदन संस्कारः)

अथ तेषु स्वेदनविधिः—

(स्वेदनार्थं धान्याम्लकम्)

नानाधान्यैर्यथाप्राप्तैस्तुषवर्जैर्जलान्वितैः ।
मृद्भाण्डं पूरितं रक्षेद्यावदम्लत्वमाप्नुयात् ॥३८॥
तन्मध्ये* घनवाङ्मुण्डी विष्णुक्रान्ता पुनर्नवा ।
मीनाक्षी चैव सर्पाक्षी सहदेवी शतावरी ॥३९॥
त्रिफला गिरिकर्णी च हंसपादी च चित्रकः ।
+समूलकाण्डं पिष्ट्वा तु यथालाभं विनिक्षिपेत् ॥४०॥
पूर्वाम्लभाण्डमध्ये तु धान्याम्लकमिदं भवेत् ।
स्वेदनादिषु सर्वत्र रसराजस्य योजयेत् ॥४१॥
अत्यम्लमारनालं वा तदभावे प्रयोजयेत् ॥

घनो मुस्ता, वाक् ब्राह्मी, केचित् 'तन्मध्ये भंगुरामुण्डी' इति पठन्ति, मुण्डी प्रसिद्धा, विष्णुकान्ता श्वेतपुष्पा अपराजिता, पुनर्नवा गन्धपूर्णेति भाषा, मत्स्याक्षी 'मछेछी' इति भाषा (हुन-गुंदा इत्यादि), सर्पाक्षी सर्पनेत्रोपमा 'चुर्ची' इति भाषा, सहदेवी प्रसिद्धा, शतावरी, शतावरीति भाषा, त्रिफला प्रसिद्धा

---

* 'भृङ्गरा' इति पाठान्तरं ।

'+ समूलं कुट्टयित्वा' इति पाठान्तरं भावप्रकाशे

गिरिकर्णी नीलपुष्पा अपराजितैव, हंसपादी हंसचरणा, चित्रकः प्रसिद्धः। समूलकाण्डं, समूलशाखं यथालाभं, अर्धसंख्याधिकमिति गुरुसंकेतः॥

प्र०—स्वेदनार्थं काञ्जिकमाह—नानेति—जलान्वितैः = जलसहितैः यथाप्राप्तैस्तुषवर्जैः = कण्डनेनविगततुषैः, नानाधान्यैः = अनेकविधै र्यवादिधान्यैः, पूरितं मृद्भाण्डं = घटादिकम्, यावदम्लत्वम् = ऋतुभेदेन यावदम्लत्वं प्राप्नुयात्तावद्रक्षत्, तदनन्तरं तदम्लभाण्डमध्ये यथालाभम् = अर्धसंख्याधिकं यथालाभं समूलकाण्डं = समूलशाखं घनादिकं = मुस्तादिकं विनिक्षिपेत्, इदं धान्याम्लकं = काञ्जिकं भवेत्, एतच्च रसराजस्य = पारदस्य स्वेदनादिषु संस्कारेषु सर्वत्र योजयेत्, तदभावे = तद्धान्याम्लकाभावे, अत्यम्लमारनालं = कुल्माषादिनिर्मितं काञ्जिकं प्रयोजयेत्। अत्रानुष्टुप् छन्दः ॥३८॥४१॥

ज्ञातव्यम्—इदं काञ्जिकं भावप्रकाशादुद्धृतेन माधवेन। रसरत्नाकररसेन्द्रचिन्तामणिग्रन्थेष्वप्यस्त्येतत्।

स्वेदन संस्कार

उ०—स्वेदन संस्कार के लिये धान्याम्लक (काँजी)--

एक मिट्टी के बड़े घड़े में जल भर कर छिलके रहित, जो जौ आदि धान्य प्राप्त हो सकें वह डाल कर, ढक कर एकान्त स्थान में, तब तक रखा रहने दे जब तक कि वह भली भाँति खट्टा हो जाय, फिर उस घड़े में नागरमोथा, ब्राह्मी, गोरखमुण्डी; सफेद फूल की अपराजिता (कोयल) पुनर्नवा (साँठ की जड़, बिसखपरा), मछेछी, सर्पाक्षी, सहदेई, शता-

वर, त्रिफला, नीले फूल की अपराजिता, हंसराज, चित्रक, आदि अथवा इनमें से आधी से अधिक, जितनी औषधियाँ प्राप्त हो सकें उनको जड़ तथा शाखा (डाली) सहित कूट कर डाल दो, तो यह धान्याम्लक (काँजी) तयार होजावेगी, इसको पारद के संस्कार आदि सब में प्रयोग करे । यदि यह धान्याम्लक न मिले, तो छिलकारहित जौ अथवा गेहूँ को उबाल कर बनाई हुई खट्टी काँजी लेनी चाहिये ॥३८-४१॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह धान्याम्लक, भावप्रकाश से उद्धृत किया है । रसरत्नाकर तथा रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० ३) आदि प्राचीन रसशास्त्रों में भी इसका उल्लेख मिलता है ।

कांजीनिर्माणविधि—कांजी बनाने में १६ प्रस्थ जल में १०० पल (एक तुला) छिलका रहित जौ गेहूँ साठी चावल आदि पदार्थ डालने चाहिये, जैसा कि पारदसंहिता में लिखा है--

तुलामितं षष्टिकतण्डुलानां,
प्रगृह्य चान्नं विधिवद्विधाय ।
द्रोणेऽम्भसि क्षिप्तमथ त्रियामा,
स्तत्सप्त रक्षेत् पिहितं प्रयत्नात् ॥
ततस्तु कल्कं सकलं निरस्यात्
तत्काञ्जिकं कथयत आरनालम् ।
तदुभे दितीदणं लघुपाचनञ्च
दाहज्वरघ्नं कफवातनाशि ॥

(पारदसंहिता)

(स्वेदनस्यप्रथमाविधिः)

त्र्यूषणं लवणं राजी लशुनं त्रिफलार्द्रकम् ।
महाबला नागबला मेघनादः पुनर्नवा ॥ ४२ ॥
चित्रको मेषशृंगी च नवसारः समं समम् ।
रसस्य षोडशांशेन सर्वं युज्ज्यात् पृथक् पृथक् ॥ ४३॥
एतद्व्यस्तं समस्तं वा पूर्वाम्लेनैव पेषयेत् ।
प्रलिम्पेत्तेनकल्केन वस्त्रं चांगुलिमात्रकम् ॥ ४४॥
तन्मध्ये निक्षिपेत्सूतं बद्ध्वा तत्त्रिदिनं पचेत् ।
दोलायन्त्रेऽम्लसंयुक्ते जायते स्वेदितो रसः ॥४५॥

मेघनादस्तण्डुलीय=भेदः पत्र=शाक=विशेषः 'चवलाई' इति भाषा, शृङ्गी मेषशृङ्गी तद=लाभे कर्कटशृङ्गी ग्राह्या, नवसागरः क्षारविशेषः ॥

प्र०—प्रथमं स्वेदनविधिमाह–त्र्यूषणमिति–त्र्यूषणं–त्रिकटुप्रभृति नवसारान्तं पृथक् पृथक् प्रत्येकं द्रव्यं पारदस्य षोडशांशं=समं समं युज्ज्यात्.व्यस्तं=पृथक् पृथक् सम तं सर्वंमिलितं वा,एतद्द्रव्यं पूर्वाम्लेनैव=भाण्डस्थधान्याम्लकेनैव पेषयेत्=पिष्ट्वा कल्कं कुर्यादित्यर्थः. तेनकल्केनांगुलिमात्रकं वस्त्रं प्रलिम्पेत्, तदनन्तरं तन्मध्ये=कल्कलिप्त=वस्त्रमध्ये, सूतं=भूर्जपत्रमध्ये स्थितं पारदं बद्धा=पोट्टलीरूपेण बद्ध्वा अम्लसंयुक्ते=धान्याम्ल=युते दोलायन्त्रे त्रिदिनं पचेत्–इत्थं रसः स्वेदितः–स्वेदन संस्कारसंस्कृतो जायते, अत्र प्रतिदिनं नूतनकल्कप्रलिप्त=वस्त्रे

* 'रजनो' इति पाठान्तरं रसरत्नाकरे भावप्रकाशे च ।

पारदं बद्धा पोट्टली करणीया । अत्रानुष्टप् छन्दः ॥
॥ ४२-४५ ॥

ज्ञातव्यम्—अयं स्वेदनसंस्कार विधि र्भावप्रकाशादुद्धृतो माधवेन, रसरत्नाकराख्ये प्राचीनरसशास्त्रेऽप्यस्त्येषः । रसतरङ्गिण्यास्तृतीयः स्वेदन प्रकारोऽस्यैवानुवादरूपोऽस्ति, परन्तु तत्रनागबला पुनर्नवयोःस्थाने शृङ्गवेरगवेधुक द्रव्ये पठिते ।

स्वेदनसंस्कार की प्रथम विधि ।

उ०—सोंठ, मरिच, पीपल छोटी, सैन्धवनमक, राई, लहसन, हरड़, बहेड़ा, आमला, अदरक, महाबला (कंघी), नागबला (गंगेरन), चौलाई, पुनर्नवा (सांठ, बिसखपरा, गदहपूरना), चित्रक (चीता), मेढासिंगी (अभाव में काकड़ासिंगी) और नौसादर, इनमें से प्रत्येकको अलग अलग पारद का सोलहवां भाग समान भाग ले और उन सबको अलग २ अथवा मिलाकर, मिट्टी के घड़े की काञ्जी से कल्क की भांति पीस ले, फिर उस कल्क का एक साफ गाढ़े कपड़े पर एक अंगुल मोटा लेपकर धूपमें सुखाले, और तत्पश्चात् उस कपड़े में, भोजपत्रों के बीचमें स्थितपारद रख,(कपड़ेकी) पोटली बाँध कर, उसी काँजी में दोलायन्त्र द्वारा तीन दिनरात स्वेदन करने से, पारद का स्वेदनसंस्कार होता है । प्रतिदिन औषधियों का नया कल्क बनाकर उससे कपड़े पर लेप कर पारद की पोटली बनानी चाहिये ॥ ४२-४५ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने स्वेदनसंस्कार की यह विधि भावप्रकाश से उद्धृत की है, परन्तु वास्तव में इस विधि का मूल आधार, रसरत्नाकरशास्त्र है ॥

रसतरंगिणी का तृतीय स्वेदनप्रकार, आयुर्वेदप्रकाश की इसी स्वेदनविधि का अनुवादमात्र है, परन्तु उसमें नागबला और पुनर्नवा के स्थान में आर्द्रक तथा गवेधुक (जंगली गेहूँ) लिखे हैं ।

स्वेदनसंस्कार का प्रयोजन—स्वेदनसंस्कार द्वारा पारद के दोषों को शिथिल किया जाता है । शिथिलता दूर होने से पारद तीव्र होजाता है । यथा—

१—दोषोत्क्लेदकृते शनैस्त्रिदिवसं मृद्वग्निना स्वेदयेत् ।
(रसपद्धति, श्लो० ६)

२—क्षाराम्लैरौषधैर्वाऽपि दोलायन्त्रे स्थितस्य हि ।
पाचनं स्वेदनाख्यं स्यान्मलशैथिल्यकारकम् ॥
(रसेन्द्रचूड़ामणि, अ० ४, रसरत्नस० अ० ८)

३—स्वेदात्तीव्रो भवेत्सूतः… (भावप्रकाशः)

४—अथातःस्वेदनं वक्ष्ये यथा तीव्रो भवेद्रसः ।
(रससार)

अथान्यत् सिद्धमतम् (स्वेदनस्य द्वितीयविधिः)

त्र्यूषणं लवणासुर्यौ चित्रकार्द्रकमूलकम् ।
पिष्ट्वा* सूतोमुहुः स्वेद्यः काञ्जिकेन दिनत्रयम्॥४६॥

त्र्यूषणं त्रिकटु, लवणं सैन्धवं, आसुरी राई, चित्रकः प्रसिद्धः, आर्द्रकंशृङ्गवेरं, मूलकं श्वेतमूलकः 'मूली' इति भाषा। पिष्ट्वा तत्कल्केन वस्त्रं लिप्त्वेत्यादि पूर्ववत् । मुहुरिति प्रतिदिनं कल्कावृत्तिरित्यर्थः । अत्रानुष्टुप् छन्दः ॥ ४६ ॥

* 'क्षिप्त्वा' इति पाठान्तरं रसरत्नसमुच्चये ।

प्र०—सिद्धमतेन स्वेदनाय द्वितीयविधिमाह—त्र्यूषणमिति त्रिकट्वादिकं पृथक् पृथक् प्रत्येकं द्रव्यं,पारदस्य षोडशांशंसमभा गृहीत्वा, पृथक् मिलित्वा वा, भाण्डस्थधान्याम्लकेनपिष्ट्वा, तत्क ल्केन वस्त्रमंगुलिमात्रकं लेपयेत्,तदनु तद्वस्त्रमध्ये पोट्टलीरूपेण बद्ध सूतः पारदः, काञ्जिके = धान्याम्लके दोलायन्त्रेण त्रिदिनं स्वेद्यः प्रतिदिनं नूतनकल्केन वस्त्र लिप्त्वा पोट्टली कार्या । अत्रानुष्टु छन्द ॥ ४६ ॥

ज्ञातव्यम्—अयंस्वेदनसंस्कारविधिर्माधवेन रसरत्नसमुच्चयादुद्धृतः । रसतरङ्गिण्या द्वितीयः स्वेदनप्रकारोऽस्यैवविधेरनुवादरूपोऽस्ति ।

सिद्धमत से स्वेदनसंस्कार की द्वितीय विधि

उ०—सोंठ, मरिच, पीपल, सैन्धवनमक, चित्रक, (चीता), अदरक, मूली, इनमें से प्रत्येक द्रव्य को पारद का सोलहवां भाग ले, काँजी के साथ पीस, कल्क बनाकर उस कल्क का एक कपड़े पर एक अंगुल मोटा लेप करे और फिर उस कपड़े में भोजपत्रों के बीच में स्थित पारद को रख पोटली बाँधकर, काँजी में दोलायन्त्र से तीन दिन तक स्वेदन करे, प्रतिदिन औषधियों का नूतनकल्क बनाकर कपड़े पर लेप कर उसमें पारद रखकर पोटली बनानी चाहिये ॥ ४ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने स्वेदनसंस्कार की यह द्वितीय विधि रसरत्नसमुच्चय से उद्धृत की है । रसतरङ्गिणी का द्वितीय स्वेदनप्रकार, आयुर्वेदप्रकाश की इसी द्वितीय विधि का अनुवादमात्र है ।

अथान्यत्सिद्धमतम् (स्वेदनस्य तृतीयविधिः)

दिनं व्योषवरावह्निकन्याकल्केषु काञ्जिके ।

रसं चतुर्गुणे वस्त्रे बद्ध्वा दोलाकृतं पचेत् ॥४७॥

व्योषं त्रिकटु, वरा त्रिफला, वह्निश्चित्रकः, कन्या 'कुवारी इति भाषा, तन्मध्यगर्भोग्राह्यः।

अन्यच्च—

(संस्कारेषुद्रव्यपरिमाणनियमः)

रसस्य षोडशांशेन द्रव्यं युञ्ज्यात्पृथक् पृथक् ।
द्रव्येष्वनुक्तमानेषु मतं मानमिदं बुधैः ॥ ४८ ॥
त्रिदिनं स्वेदनाशक्तौ दिनमेकं निरन्तरम् ।
स्वेदयेद्रसराजं तु नातितीक्ष्णेन वह्निना ॥ ४९ ॥

केचित्तु मर्दनपूर्वकं स्वेदनमिच्छन्ति, ते उपपत्तिज्ञानरहिताः, क्रमविरोधश्च तेषां (मते) दूषणम् ।

प्र०—सिद्धमतेन स्वेदनस्य तृतीयविधिमाह—दिनमिति—व्योषं=त्रिकटु, त्रिकट्वादिकल्केषु—त्रिकट्वादिकल्कमध्ये रसं=पारदं निधाय तत्कल्कञ्च चतुर्गुणे=चतुरावृते सभूर्जके वस्त्रे पोट्टलीरूपेण बद्ध्वा दोलाकृतं=दोलायन्त्रगतं कृत्वा काञ्जिके दिनम्—अहोरात्रं,विशेषगुणाधानार्थन्तु दिनत्रयं, पचेत्—स्वेदयेत्॥ ॥ अत्रानुष्टुप् छन्दः ॥ ४७ ॥

ज्ञातव्यम्—अयंस्वेदनस्य तृतीयो विधिर्माधवेन रसेन्द्र चिन्तामणित उद्धृतः, योगरत्नाकरेऽप्यस्ति, अस्मिन्नायुर्वेदप्रकाशेऽपि तिर्यक्पातन संस्कारानन्तरं (८४-८५ श्लोके) पुनरुपात्तः।

प्र०—संस्कारेषु ग्राह्यद्रव्यपरिमाणनियममाह—रसस्येति अनुक्तमानेषु द्रव्येषु रसस्य=पारदस्य षोडशांशेन=षोडशतम भागेन पृथक् पृथक् द्रव्यं—युञ्ज्यात्, इति मानं=परिमाणं बुधैः

रसशास्त्राचार्यैर्मतम् । रसराजं = पारदं त्रिदिनंस्वेदनाशक्तौ निरन्तरमेकं दिनम् = अहोरात्रं, नातितीक्ष्णेन = मध्यमाग्निना स्वेदयेत्॥

॥ अत्रानुष्टप्छन्दः ॥ ४८-४९ ॥

ज्ञातव्यम्—अत्राष्टचत्वारिंशत्तमः श्लोको भावप्रकाशादुद्धृतो माधवेन ॥

सिद्धमत से स्वेदनसंस्कार की तृतीय विधि ।

पारद का सोलहवां भाग-सोंठ, मरिच, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आमला, चित्रक तथा घृतकुमारी (ग्वारपाठा) का गूदा लेकर, उन सबको काँजीमें पीस कल्क बनाकर, उस कल्क में पारद को रक्खे, फिर एक चौलड़ कपड़ेमें भोजपत्र बिछाकर पारदयुक्त कल्क रख, कपड़े की पोटली बनाकर काँजी में दोला यन्त्र द्वारा एक दिन रात पकाकर स्वेदन करे, यदि पारद का उत्तम स्वेदनसंस्कार करना हो तो तीन दिन तक स्वेदन करना चाहिये ॥ ४६ ॥

ज्ञातव्य--माधव ने स्वेदनसंस्कार की यह तीसरी विधि, रसेन्द्रचिन्तामणि से उद्धृत की है, योगरत्नाकर में भी यह विधि है, और इस आयुर्वेदप्रकाश में भी आगे तिर्यक्पातनसंस्कार के पश्चात् (८४-८५ श्लोकों में) फिर दूसरी बार लिखी है ।

संस्कारों में ग्राह्यद्रव्यों के परिमाण का नियम ।

पारद के संस्कारों में ग्राह्यद्रव्यों का परिमाण जहाँ पर न लिखा हो, वहाँ पर अलग अलग प्रत्येक द्रव्य पारद का सोलहवाँ भाग लेना चाहिये, ऐसा रसशास्त्र के आचार्यों ने माना है, यदि पारद को तीन दिनरात तक स्वेदन करने में

असमर्थ हो तो एक दिन रात ही मध्यम अग्नि से स्वेदन करे ॥ ४८-४६ ॥

ज्ञातव्य--माधव ने इन दोनों श्लोकों में से पहिला अड़तालीसवां श्लोक, भावप्रकाश से उद्धृत किया है । वास्तव में इसका आधार रसरत्नसमुच्चय का निम्नलिखित श्लोक है-

षोडशांशं तु तद्द्रव्यं सूतमानान्नियोजयेत् ।

(रसरत्नसमुच्चय, अ० ११)

कुछ (रससंकेतकलिकारचयिता कायस्थचामुण्ड आदि) आचार्य, पारद का मर्दनसंस्कार करने के पश्चात् स्वेदनसंस्कार मानते हैं, वे युक्ति ज्ञानहीन हैं, उनके मतमें क्रमविरोध दोष आता है ।

२—अथ मर्दनम् ।

(मर्दनस्य प्रथमो विधिः)

भिषग्विमर्दयेच्चूर्णैर्मिलित्वा षोडशांशतः ।
सूतस्य गालितैर्वस्त्रै र्वक्ष्यमाणद्रवादिभिः ॥५०॥
गृहधूमेष्टिकाचूर्णं तथा दधिगुडान्वितम् ।
लवणासुरिकायुक्तं क्षिप्त्वा सूतं विमर्दयेत् ॥५१॥
जीर्णाभ्रकं तथा जीर्णबीजं सूतं तथैव च ।
गृह्णाति निर्मलो रागान् ग्रासे ग्रासे विमर्दितः ॥५२॥

प्र०—मर्दनस्य प्रथमविधिमाह—भिषगिति—भिषक् = रसवैद्यः, वस्त्रै र्गालितैः = वस्त्रपूतैः, सूतस्य = पारदस्य षोडशांशतमचूर्णैः = षोडशतमभागैरौषधिचूर्णैः, वक्ष्यमाणद्रवादिभिः

पारदंविमर्दयेत्। गृहधूमः, इष्टिकाचूर्णं = रक्तेष्टिकाचूर्णं, दधि, गुडः लवणं = सैन्धवं, आसुरिका = राजिका, एभिःपारदस्य षोडशांतमभागमितै रौषधिचूर्णैर्युक्तं = सहितं सूतं = पारदं खल्वे-क्षिप्त्वा दिनत्रयंविमर्दयेत्, तथा एवमेव विशेषगुणाधानार्थं जीर्णाभ्रकं = जारणया जीर्णमभ्रकसत्वं यस्मिंस्तज्जीर्णाभ्रकं, जीर्ण-बीजम् = जीर्णं बीजं = शुद्धं स्वर्णं रूप्यं च यस्मिंस्तज्जीर्णबीजं सूतं = पारदं खल्वे क्षिप्त्वा त्रिदिनंविमर्दयेत्, ग्रासेग्रासे विमर्दितो निर्मलः = स्वच्छः सूतो रागान् गृह्णति ॥ अत्रानुष्टप् छन्दः ॥ ५० ॥ ५२ ॥

ज्ञातव्यम्—अत्र प्रथमः पञ्चाशत्तमः श्लोको रसेन्द्र-चिन्तामणितः, अवशिष्टौ च द्वितीयतृतीयौ श्लोकौ रसरत्नसमु-च्चयादुद्धृतौ माधवेन।

जीर्णाभ्रकजीर्णबीजपारदस्वरूपमग्रे ऽस्मिन्प्रथमाध्याये एव वक्ष्यति माधवः ।

मर्दन संस्कार की प्रथम बिधि।

उ०—सामान्यविधि—वैद्य, पारद के सोलहवां भाग मर्दन संस्कार की औषधियों को अलग अलग लेकर कूट चूर्ण कर कपड़े में छानले, फिर इन औषधियों के चूर्ण के साथ पारद को खरल में डाल कर तीन दिन तक घोटे।

विशेष विधि--घर का धुआँ, ईंट का चूर्ण, दही, गुड़, सैंधा नमक और राई को अलग अलग पारद का सोलहवां भाग लेकर चूर्ण करे और इस चूर्ण सहित शुद्ध पारद को खरल में डाल कर तीन दिन तक घोटे, यदि उत्तम संस्कार करना हो तो विशेष गुण बढ़ाने के लिये शुद्ध पारद के स्थान

पर अभ्रक सत्व जीर्ण किया हुआ जीर्णाभ्रक तथा वीजरूप शुद्ध स्वर्ण तथा चांदी को जीर्ण किये हुए जीर्णबीज पारद को; उन औषधियों के चूर्ण के साथ खरल में डाल कर तीन दिनरात तक मर्दन करना (घोटना) चाहिये। जैसे जैसे पारद को ग्रास देकर मर्दन किया जाता है, वैसे वैसे ही मर्दन किया हुआ वह स्वच्छ पारद, उत्तम रङ्ग को धारण करता है ॥५०॥५२॥

ज्ञातव्य—माधव ने यहां पर इन तीनों श्लोकों में से पहिला श्लोक, रसेन्द्रचिन्तामणि से और शेष दो श्लोक रसरत्नसमुच्चय से उद्धृत किये हैं।

जीर्णाभ्रक का गुण आगे १२४ वें श्लोक में तथा जीर्ण बीज पारद का स्वरूप आगे आयुर्वेदप्रकाश के इसी प्रथम अध्याय में माधव स्वयं लिखेंगे।

मर्दनसंस्कार का प्रयोजन—मर्दनसंस्कार द्वारा करने से पारद के बाहिर के आवरण रूप कञ्चुक दोष नष्ट हो जाते हैं, जिससे पारद अत्यन्त शुद्ध हो जाता है। यथा—

१—उदितैरौषधैः सार्धं सर्वाम्लैःकाञ्जिकैरपि ।
पेषणं मर्दनाख्यं स्याद्बहिर्मलविनाशनम् ॥
(रसेन्द्रचूड़ामणि अ० ४, रसरत्नसमु० अ० ८)

(२) अथ मर्दनकं कर्म येन शुद्धतमो रसः।
प्रजायते···· (रसप्रकाशसुधाकर अ० १।३६)

(३) अ-मर्दनाच्च सुनिर्मलः (भावप्रकाश)

आ-स्वेदनोद्दिष्टभेषज्यैर्मर्दयेत्काञ्जिकैस्त्र्यहम् ।
बहिर्मलविनाशाय रसराजं तु निश्चितम् ॥
(रसप्रकाशसुधाकर अ० १, श्लो० ४०-४१)

अथान्यत्सिद्धमतम् । (मर्दनस्य द्वितीय विधिः)

रक्तेष्टिकानिशाधूमसारोर्णाभस्मचूर्णकैः ।
जम्बीरद्रवसंयुक्तैर्मुहुर्मर्द्यो दिनत्रयम् ॥ ५३ ॥
दिनैकं वापि सूतः स्यान्मर्दनान्निर्मलः परम् ।
ऊर्ध्वपातनयन्त्रेण गृह्णीयाच्च पुनः पुनः ॥ ५४ ॥
पटसारणतोवाऽपि क्षालनादारनालतः ।

प्र०—सिद्धमतेन मर्दनस्य द्वितीयविधिमाह—रक्तेति-रक्तेष्टिका—गृहकूपनिर्माणादिषु प्रयुक्ता रक्तवर्णापक्वेष्टिका, निशा= हरिद्रा, धूमसारः=गृहधमः, ऊर्णाभस्म=मेषरोमभूतिः, एतेषां पृथक् पृथक् पारदस्य षोडशांशमितानां चूर्णैः जम्बीरद्रवसंयुक्तैः =जम्बीरद्रवसहितैः सूतः=पारदो दिनत्रयं,दिनैकंवापि मुहुर्मर्द्यः, इत्थंमर्दनात् सूतः परं निर्मलोऽत्यर्थं शुद्धः स्यात् । तदनन्तर मूर्ध्वपातनयन्त्रेण पुनः पुनः बारम्बारं पारदं गृह्णीयात्, पटसारणतः=वस्त्रगालनात्, आरनालतः=काञ्जिकात् क्षालनात्= प्रक्षालनाद्वा शुद्धतमं पारदं गृह्णीयात् । अत्रानुष्टप्छन्दः॥५३-५४॥

ज्ञातव्यम्—एषु श्लोकेषु प्रथमस्त्रिपञ्चाशत्तमः श्लोको रसेन्द्रचिन्तामणौ योगरत्नाकरे चोपलभ्यते, तत्र नागदोषापहरणाय मर्दनमेतदिति स्पष्टीकृतम् । रसतरङ्गिण्याः पारदस्य प्रथम शोधनप्रकारोऽस्यैवानुवादरूपः ।

मर्दनसंस्कार की द्वितीय विधि

उ०--लाल ईंट, हल्दी, घर का धूआँ, भेड़ की ऊन की राख, इन सब का चूर्ण, अलग अलग पारद का सोलहवाँ भाग

ले और इसके चूर्ण के साथ साथ पारद को, जंभीरी के रस से तीन दिनरात अथवा एक दिनरात घोटे (मर्दन करे), इस प्रकार मर्दन करने से पारद अत्यन्त शुद्ध हो जाता है। इसके पश्चात् बार बार ऊर्ध्वपातनयन्त्र द्वारा उड़ा कर शुद्ध पारद को ग्रहण करे, अथवा कपड़े में छान कर या कांजी से धोकर शुद्ध पारद को ग्रहण करे ॥५३॥५४॥

रसतरङ्गिणी (अ० ५ श्लो० २२) का पारद का प्रथम शोधनप्रकार, इसी श्लोक का अनुवादमात्र है।

आयुर्वेदप्रकाश के इस श्लोक का समानभाव वाला रसपद्धति का निम्नलिखित श्लोक है।

कल्याणेऽह्नि सुशिक्षितेन भिषजा खल्वे विशालेतरे,
सुस्निग्धोपलजन्मनि त्रिदिवसं जम्भाम्भसा सम्भृतैः।
ऊर्णाभस्मनिशानिशान्तवलभीधूमेष्टकापांसुभिः,
प्रत्येकं रसषोडशांशमिलितै र्मन्द्यं विमर्द्यो रसः॥

(श्लोक ७)

३—अथ मूर्च्छनम्।

(मूर्च्छनस्य प्रथमोविधिः)

गृहकन्या मलंहन्ति* त्रिफलावह्निनाशिनी ॥५५॥
चित्रमूलं विषंहन्ति तस्मादेभिः प्रयत्नतः।
मिश्रितं+ मर्दयेत्सूतं सप्तवाराणि मूर्च्छयेत् ॥५६॥

* 'हन्यात्'।
+ 'सूतकं द्रव्यैः' इति च पाठान्तरं रसरत्नसमुच्चये।

इत्थं सम्मूर्च्छितः सूतो दोषशून्यः प्रजायये ।
सप्तवाराणि मूर्च्छयेदिति धातुवादे, न रसेषु ।

मूर्च्छनसंस्कार की प्रथम विधि ।

प्र०—मूर्च्छनस्य प्रथमविधिमाह—गृहकन्येति—गृहकन्या घृतकुमारिका, पारदस्य, मलं = मलदोषं हन्ति = विनाशयति अपहरतीत्यर्थ, त्रिफला वह्निनाशिनी वह्निसञ्ज्ञक दोषविनाशिनी, अस्तीति शेषः, चित्रमूलं = चित्रकमूलं विषं = विषदोषं हन्ति, तस्मादेभिद्रव्यैर्मिश्रितं सूतं = पारदं प्रयत्नतः = यत्नपूर्वकं पृथक्-पृथक् मर्दयेत्, एव सप्तवाराणि पारदं मर्दयित्वा मूर्च्छयेत, इत्थं = पूर्वोक्तविधानेन सम्मूर्च्छितः सूतःदोषशून्यः, मलादिमुख्यदोष-त्रयरहितः प्रजायते । अत्र धातुवादे (स्वर्णादि निर्माणे) एव सप्तवारं मूर्च्छनाकर्तव्या, न तु रसेषु ॥ अत्रानुष्टप् छन्दः ॥ ॥५५॥५६॥

ज्ञातव्यम्—श्लोकाविमौ रसरत्नसमुच्चयादुद्धृतौ माधवेन।

रसतरङ्गिण्या मूर्च्छनस्य प्रथमः प्रकारोऽस्यैव प्रथम-विधेरनुवादरूपः ।

उ०—घृतकुमारी (ग्वारपाठा) पारद के मल दोष को नष्ट करती है । त्रिफला (हरड़, बहेड़ा तथा आँवला) वह्नि (अग्नि) दोष नाशक है और चित्रक (चीता) की जड़ पारद के बिष दोप को नष्ट करती है, इसलिये इन पृथक पृथक् औषधियों के साथ पारद को घोटे (मर्दन करे) इस तरह सात सात बार पारद को मूर्च्छित करना चाहिये, इस प्रकार मूर्छित हुआ पारद, मल आदि तीन मुख्य दोष रहित हो जाता है ॥५५॥५६॥

ज्ञातव्य—यहाँ पर जो पारद को सात बार मूर्च्छित करने को लिखा है, वह स्वर्ण आदि धातु निर्माण (धातुवाद कीमियागिरी) के लिये लिखा है। चिकित्सोपयोगी पारद के लिये नहीं लिखा है, इसलिये चिकित्सा के लिये पारद को सात सात बार मूर्छित करने की आवश्यकता नहीं है। रस पद्धति के टीकाकार का भी यही मत है। यथा—

केचित्तु.........गृहकन्या त्रिफलाचित्रकैः क्रमेणमर्दयित्वा-मूर्छनासप्तवारं कर्तव्या इतिवदन्ति, तद्धातुवादे न रसेषु।"

माधव ने मूर्च्छन संस्कार की यह विधि, रसरत्नसमुच्चय से उद्धृत की है।

रसतरङ्गिणी का मूर्छन का प्रथम प्रकार भी इसी विधि का अनुवाद मात्र है। वास्तव में इस विधि का मूल आधार, रसहृदय का निम्नलिखित श्लोक है—

गृहकन्या हरति मलं त्रिफला शिखिनं चित्रकश्च विषम्।
तस्मादेभिर्मिश्रैर्वारान् सम्मूर्च्छयेत् सप्त॥

रससंकेतकलिका में, इस विधि का रूपान्तर, निम्नलिखित प्रकार से है—

मूर्च्छयेत्सप्तधा पश्चात् कन्याग्न्यर्क वराम्बुभिः।

मूर्च्छन संस्कार का लक्षण और प्रयोजन।

इस मूर्च्छन संस्कार से, पारद के मल, वह्नि, विष तथा वङ्ग आदि दोष नष्ट हो जाते हैं। यथा—

(१) मूर्च्छनोद्दिष्टभेषज्यैर्नष्टपिष्टत्वकारकम् ।
तन्मूर्च्छनं हि सम्प्रोक्तं सर्वदोषविनाशनम् ॥
स्वरूपस्य विनाशेन पिष्टत्वापादनं हि यत् ।
विप्रुषैर्वर्जितः सूतो नष्टपिष्टः स उच्यते ॥

(रसेन्द्रचूडामणि, अ० ४)

(२) मर्दनोद्दिष्टभेषज्यैर्नष्टपिष्टत्वकारकम् ।
तन्मूर्च्छनं हि वङ्गाहिभुजञ्चुकनाशनम् ॥

(रसरत्नसमुच्चय अ० ८)

अथान्यन्मतम् ।

(मूर्च्छनस्य द्वितीयो विधिः)

राजवृक्षस्य मूलेन मर्दयेत्सह कन्यया ।
मलदोषापनुत्यर्थं मर्दनोत्थापने शुभे ॥५८॥
कृष्णधत्तूरकद्रावैश्चाश्चल्यविनिवृत्तये ।
मर्दनोत्थापने कुर्यात् सूतराजस्य चासकृत् ॥५९॥
त्रिफलाकन्यकातोयैर्विषदोषोपशान्तये ।
व्योषेण गिरिदोषन्तु कन्यातोयेन यत्नतः ॥६०॥
चित्रकस्य च चूर्णेन सकन्येनाग्निनाशनम् ।
आरनालेन चोष्णेन प्रतिदोषं विशोधयेत् ॥६१॥

प्र०– मतान्तरेण मूर्छनस्य द्वितीयविधिमाह–राजवृक्षस्येति–राजवृक्षस्य = आरग्वधस्य मूलेन = मूलोत्थचूर्णेन पार-

दस्य षोडशांशामितचूर्णेनेत्यर्थः, कन्यया = घृतकुमारिकामध्यभागेन सह पारदं मर्दयेत्, मलदोषापनुत्त्यर्थं = मलदोषापहरणार्थं मर्दनोत्थापने शुभे स्तः, सूतराजस्य = पारदस्य चाञ्चल्यविनिवृत्तये = चाञ्चल्यदोषहरणार्थं कृष्णधत्तूरकद्रावैः = कृष्णधत्तूरस्वरसैरसकृन्नैकशो मर्दनोत्थापने कुर्यात्, पारदस्य विषदोषशान्तये = विषदोषशान्त्यर्थं त्रिफलाकन्यकातोयैः = त्रिफलाक्वाथेन घृतकुमारिकाया मध्यभागस्यस्वरसेन च पारदं मर्दयेत्, पारदस्य गिरिदोषमपहर्तुं व्योषेण = त्रिकटुना, कन्यातोयेन = कुमारी स्वरसेन च पारदं मर्दयेत्, सकन्येन = कुमारीस्वरससहितेन चित्रकस्य चूर्णेन च मर्दनेनाग्निनाशनं = पारदस्य वह्निदोषनाशनं भवति, इत्थं प्रतिदोषं = प्रत्येकं मलादिदोषमपहर्तुमुपरिनिर्दिष्टभेषजचूर्णैः सह मर्दनेन मूर्छितं पारदमुष्णेन = मन्दाग्निना तप्तेनारनालेन = काञ्जिकेन विशोधयेत् = प्रक्षालयेत् ॥५८-६१॥

ज्ञातव्यम्—एते श्लोका रसेन्द्रचूड़ामणित उद्धृता माधवेन।

उ०—पारद का सोलहवां भाग अमलतास की जड़ का चूर्ण और घृतकुमारी के बीच के गूदे का स्वरस खरल में डाल पारद को मर्दन करे, इससे पारद का मल दोष नष्ट होता है क्योंकि मल दोष को नष्ट करने के लिये मर्दन और उत्थापन संस्कार उत्तम हैं। पारद की चञ्चलता को नष्ट करने के लिये काले धतूरे के रस से अनेक बार मर्दन और उत्थापन संस्कार करे, पारद के विष दोष को शान्त करने के लिये त्रिफला के क्वाथ और घृतकुमारी (ग्वारपाठा) के रस के साथ पारद को घोटे (मर्दन करे)। पारद के गिरि दोष को दूर करने

के लिये सोंठ, मिर्च, पीपल के क्वाथ (काढ़े) और ग्वारपाठा के रस से पारद को घोटे, ग्वारपाठा के स्वरस के सहित चित्रक के चूर्ण के साथ मर्दन करने से पारद का वह्नि (अग्नि) दोष नष्ट हो जाता है, इस प्रकार मल आदि प्रत्येक दोष को नष्ट करने के लिये ऊपर लिखी हुई औषधियों के साथ मर्दन करने से मूर्च्छित हुए पारद को मन्द अग्नि से गर्म की हुई कांजी से धोना चाहिये।

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक, रसेन्द्रचिन्तामणि के तृतीय अध्याय से उद्धृत किये हैं, पहिला अट्ठावनवां श्लोक तथा अन्तिम इकसठवें श्लोक का उत्तरार्ध योगरत्नाकर में भी है।

आयुर्वेदप्रकाश में इसी प्रथम अध्याय में आगे भी पारद शोधन प्रकरण में कुछ परिवर्तित रूप में यह श्लोक हैं।

यथा—

राजवृक्षो मलं हन्ति चित्रको वह्निदूषणम्।
चाञ्चल्यं कृष्णधत्तूरस्त्रिफला विषनाशिनी॥
कटुत्रयं गिरिं हन्ति ह्यसह्याग्निं त्रिकण्टकः।
प्रतिदोषं कलांशेन तत्रचूर्णं सकन्यकम्॥
सुवस्त्रगालितं खल्वे सूतं क्षिप्त्वा यथाक्रमम्।
प्रत्येकं प्रत्यहं यत्नात् सप्तरात्रं विमर्दयेत्॥
उद्धृत्य चारनालेन मृद्भाण्डे क्षालयेत्सुधीः।
सर्वदोषविनिर्मुक्तः सप्तकञ्चुकवर्जितः।
जायते शुद्धसूतोऽयं योजयेद्रसकर्मणि॥

(आयुर्वेदप्रकाश, अ० १, श्लोक १६१–१६४)

(शोधनफलम्)

एवं संशोधितः सूतः सप्तदोषविवर्जितः ।
जायते कार्यकर्त्ता च ह्यन्यथा कार्यनाशकः ॥ ६२ ॥

प्र०—शोधनफलमाह—एवमिति—एवं = पूर्वोक्तप्रकारेण संशोधितः सूतः = पारदः, सप्तदोषविवर्जितः—नागादिसप्तदोष-रहितः कार्यकर्ता = रसकर्मकरो जायते, अन्यथा अशुद्धः पारदः कार्यनाशको भवति । अत्रानुष्टप्छन्दः ॥ ६२ ॥

ज्ञातव्यम्—श्लोकोऽयं रसेन्द्रचिन्तामणित उद्धृतो माधवेन ।

शोधनफल ।

उ०—इस प्रकार पूर्वोक्त विधिसे शुद्ध कियागया पारद, नाग आदि सात दोषों से रहित, पारद के सम्पूर्ण कार्यों को सिद्ध करने वाला होजाताहै, अन्यथा अशुद्ध पारद कार्यनाशक होता है ॥ ६२ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० ३।१५) से उद्धृत किया हैं ।

अथ रसस्य कञ्चुकहरणम् ।

कुमारिकाचित्रकरक्तसर्षपैः
कृतैः कषायैर्बृहतीविमिश्रितैः ।

फलत्रिकेणापि विमर्दितो रसो

दिनत्रयं सप्तमलैर्विमुच्यते ॥ ६३ ॥

(इति युगपत्सप्तमलनाशनम्)

कञ्चुकदोषहरणमाह—कुमारिकेति—कुमारिकादीनां काथेनदिनत्रयं विमर्दितो रसः = पारदः, सप्तमलैः = पारदस्यावरण रूपैः सप्तकञ्चुकाख्यदोषैर्युगपदेव विमुच्यते । अत्रवंशस्थ वृत्तम् ॥ ६३ ॥

पारद के कंचुक दोषों का हरण ।

घृतकुमारी (ग्वारपाठा), चित्रक, राई, कटेहरी और त्रिफला के क्वाथ (काढ़े) के साथ तीन दिन मर्दन करने (घोटने) से, पारद के सात कञ्चुक दोष एक साथही नष्ट हो जाते हैं ॥ ६३ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने भावप्रकाश से यह श्लोक आयुर्वेद-प्रकाश में उद्धृत कियाहै,और आयुर्वेदप्रकाश से रसतरङ्गिणी (पञ्चमतरङ्ग, श्लोक ३१ तृतीय शोधनप्रकार) में उद्धृत किया गया है।

पारद के कंचुक दोषों को दूर करने में घृतकुमारी सर्व-श्रेष्ठ है ! जैसाकि रसशास्त्रों में लिखा है—

(१) चित्रकस्तु विषं हन्ति कुमारी सप्तकंचुकान् ।

(रसार्णव)

(२) आरग्वधो हन्ति मलं प्रयत्नात् कुमारिका सप्त हि कञ्चुकांश्च ।

'रससार' ग्रन्थ में प्रत्येक कंचुक दोष को दूर करने की पृथक् पृथक् विधि लिखी है । जैसे—

दिनानि सप्तसंपिष्टो वज्रीक्षीरेण पारदः ।
स्वर्जिकाक्षारयुक्तेन भूमिदोषो विनश्यति ॥
टङ्कणक्षारसंयुक्तमर्कक्षारं नियोजयेत् ।
सप्ताहं मर्दयेत्सूतमश्मकंचुकनाशनम् ॥
चित्रकद्रवसंपिष्टो टङ्कणेन समन्वितः ।
कपाली वङ्गसम्भूता नश्यत्येव न संशयः ॥
वज्रकन्दरसेनैव नवसारयुतेन च ।
वङ्गदोषसमुद्भूता कालिका नश्यति ध्रुवम् ।
टङ्कणेन कलांशेन कटुतुम्बीरसेन च ।
दिनानि सप्त संघृष्टो नागश्यामां व्यपोहति ॥
बीजकक्वाथसंघृष्टो निम्बूफलरसेन च ।
कपाली नागसम्भूता नश्यत्येव न संशयः ॥

अथोत्थापनम् (प्रथमविधिः)

तत उत्थापयेत्सूतमातपे निम्बुकार्दितम् ॥ ६४ ॥
उत्थापनावशिष्टं तु चूर्णं पातनयन्त्रके ।
धृत्वाऽग्नावूर्ध्वभाण्डाप्तं संगृहेत्पारदं भिषक् ॥६५॥

वाग्भटोऽपि—

संशुद्धोऽस्माद्विरेकात्तु रसः पात्यस्ततः परम् ।
उत्थितः काञ्जिकक्वाथैः क्षालनीयस्ततः परम्॥६६॥

प्र०—उत्थापनस्य प्रथमविधिमाह—ततइति—मूर्च्छन संस्कारादनन्तरं भिषक् = वैद्यः, आतपे = घर्मे निम्बुकार्दितं = निम्बु

करसेन दिनमेकं विमर्दितं सूतं = पारदमुत्थापयेत, उत्थापनावशिष्टं तु चूर्णं = पारदचूर्णं पातनयन्त्रके = डमरूयन्त्रे ऽग्नौ वह्नौ धृत्वा = स्थापयित्वा, ऊर्ध्वभाण्डाप्तं = वह्निसंयोगादूर्ध्व भाण्डेसंम्प्राप्तं, संलग्नं पारदं संगृहेत् = गृह्णीयात् ॥ अत्रानुष्टप् छन्दः ॥ ६४–६५ ॥

ज्ञातव्य—अत्र पञ्चषष्टिमितः, श्लोको रसेन्द्रचिन्तामणित उद्धृतो माधवेन।

प्र—वाग्भटमतमाह—संशुद्धइति—स्पष्टार्थम्। अत्रानुष्टप् छन्दः ॥ ६६ ॥

उत्थापनसंस्कार की प्रथम विधि।

उ०—मूर्च्छनसंस्कार करने के पश्चात्, वैद्य धूप में नीबू के रस से एक दिन मर्दन किये गये पारद का उत्थापनसंस्कार करे, अर्थात् धूप में मर्दन किये गये पारद को सूखने पर खरल में से निकाल ले। यदि भली भांति उत्थापन न होने से खरल के घुटे हुए चूर्ण में कुछ पारद शेष रह जाय, तो उस चूर्ण को डमरूयन्त्र में रख चूल्हे पर चढ़ाकर अग्नि दे, और अग्नि से गर्म होने पर उड़कर ऊपर की हांडी में लगे हुए पारद को, ऊन के वस्त्र से पोंछकर इकट्ठा करले ॥ ६४–६५ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने पैंसठवां (६५) श्लोक रसेन्द्रचिंतामणि से उद्धृत किया है। चौंसठवां तथा पैंसठवां श्लोक, योगरत्नाकर ग्रन्थ में भी है।

पारद की इस उत्थापन विधि का रसप्रकाश सुधाकर के निम्नलिखित श्लोक में भी वर्णन मिलता है—

सूर्यातपे मर्दितोऽसौ दिनमेकं शिलातले ।
उत्थापनं भवेत्सम्यङ् मूर्च्छादोषनाशनम् ॥
(रसप्रकाशसुधाकर, अ० १)

आचार्य वाग्भट की सम्मति ।

इस प्रकार उत्थापनसंस्कार से शुद्ध हुए पारद का फिर ऊर्ध्वपातन करे, नीबू के रस आदि में मर्दन (घोट) कर उत्थापन किये गये (निकाले गये) पारद को फिर काँजी के क्वाथ से धोना चाहिये ॥ ६६ ॥

उत्थापनसंस्कार का लक्षण तथा प्रयोजन ।

स्वेदन आदि क्रियाओं से, मूर्च्छनसंस्कार द्वारा उत्पन्न हुए नष्टपिष्टत्व को दूर कर पारद को पहिला स्वरूप प्राप्त कराना, उत्थापनसंस्कार कहलाता है, पारद को पहिला स्वरूप प्राप्त कराना ही इस संस्कार का प्रयोजन है । यथा—

१—स्वेदातपादियोगेन स्वरूपापादनं हि यत् ।
तदुत्थापनमित्युक्तं मूर्च्छाव्यापत्तिनाशनम् ॥
(रसेन्द्रचूड़ामणि, अ० ४—रसरत्नसमुच्चय, अ० ८)

२—उत्थापनं भवेत्सम्यङ् मूर्च्छा दोषविनाशनम् ।
(रसप्रकाशसुधाकर, अ० १)

(द्वितीयो विधिः)

रसरत्नाकरस्तूत्थापनक्लेशमसहमानः सुगमोपायमाह; यथा—

प्रक्षाल्यकाञ्जिकैः साम्लैस्तमादाय विमर्दयेत् ।

प्रक्षाल्य काञ्जिकेनैव तमादाय विमूर्च्छयेत् ॥ ६७ ॥

(इति सुगमप्रकारः)

प्र०—रसरत्नाकरनिर्दिष्टं सुगमोपायमाह—प्रक्षाल्येति—काञ्जिकैः प्रक्षाल्य = क्षालयित्वा, तं = पारदम्, आदाय = गृहीत्वा, साम्लैः = निम्बूकादिसहितैः काञ्जिकैः प्रहरमात्रं विमर्दयेत् तदनन्तरं काञ्जिकेनैव प्रक्षाल्य तं पारदमादाय विमूर्छयेत्। अत्रानुष्टप् छन्दः ॥ ७७ ॥

रसरत्नाकर में निर्दिष्ट द्वितीय विधि।

उ०—उत्थापन संस्कार करने के झंझट से खिन्न हो रसरत्नाकर ग्रन्थ कर्त्ता (नित्यनाथ) ने, निम्नलिखित दूसरी विधि लिखी है—

पारद का काँजी से धोकर फिर नीबू आदि खट्टे पदार्थों के रस के सहित काँजी से पारद को एक पहर (३ घण्टे) तक मर्दन करे (घोटे) और फिर काँजी से ही धोकर मूर्छित करे ॥ ६७ ॥

ज्ञातव्य—शार्गंधरसंहिता में भी यह विधि लिखी है।

जैसे—एवं रससमैस्तद्वत्सूतो मर्द्यस्तुषाम्बुना।

(शार्गधर-मध्यमखण्ड अ० १२)

(तृतीयो विधिः)

अन्यत्रापि—

जलैः सोष्णारनालैर्वा क्षालनादुत्थितो भवेत्।
अथवा पातनायन्त्रे पातनादुत्थितो भवेत् ॥ ६८ ॥

प्र०—रसरत्नाकर निर्दिष्टमेव प्रकारान्तरमाह—जलैरिति-सोष्णारनालैः=वह्निसंयोगादुष्णकाञ्जिकसहितैःजलैः क्षालनात्=शोधनात् वा=अथवा, पारदउत्थितो भवेत्, अथवा पातनयन्त्रे=डमरूयन्त्रे, पातनात्—ऊर्ध्वपातनात् पारद उत्थितो भवेत्। अत्रानुष्टप्छन्दः ॥ ६८ ॥

तृतीयविधि ।

उ०—अथवा अग्नि से गर्म की हुई काँजी सहित जलसे धोने से, पारदका उत्थापन होजाता है, अथवा डमरूयंत्र द्वारा ऊर्ध्वपातन करने से पारद का उत्थापन होजाता है ॥६८॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक, रसरत्नाकर से उद्धृत किया है।

५—अथ पातनम्।

तच्च त्रिविधम्—ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्भेदात्।

(१) तत्रोर्ध्वपातनं यथा- (प्रथमोविधिः)

भागास्त्रयो रसस्यार्कचूर्णस्यैकोऽथ निम्बुकैः।
एतत्संमर्दयेत्तावद्यावदायाति पिण्डताम् ॥ ६९ ॥
तत्पिण्डं तलभाण्डस्थमूर्ध्वभाण्डे जलं क्षिपेत्।
कृत्वालवालं केनापि दत्त्वा*वार्द्र हि सोतकम्॥७०॥

---

* 'चार्द्र' इति पाठान्तरं मुम्बय्यां मुद्रितायुर्वेदप्रकाशे।

सम्मुद्र्याग्निमधस्तस्य चतुर्यामं प्रबोधयेत् ।
युक्त्योर्ध्वभाण्डसंलग्नं गृह्णीयात्पारदं ततः ॥
ऊर्ध्वपातनमित्युक्तं भिषग्भिः सूतशोधने ॥ ७१ ॥

'अर्कचूर्णस्य ताम्ररजसः ।

प्र०—पातनभेदानाह–तदितिस्पष्टम् ।

ऊर्ध्वपातनस्य प्रथमविधिमाह—भागा इति—रसस्य = शुद्ध पारदस्य त्रयोभागाः अर्कचूर्णस्य = ताम्ररजस एको भागः, एतत्पारदताम्रद्वयं खल्वे सम्मेल्य, अथ = अनन्तरं निम्बुकैः—निम्बुस्वरसैः, यावत्पिण्डतां = पिण्डत्वं पिष्टिरूपमायाति तावत्सम्मर्दयेत्, यदि पिण्डत्वं न स्यात्तदा किञ्चित्तुत्थं मिश्रयित्वा मर्दयेत्, उक्तं च रससारे—

"यदा न जायते पिष्टिः किञ्चित्तुत्थं प्रयोजयेत्"।

तत्पिण्डं तलभाण्डस्थम् = अधो भाण्डस्थं कुर्यात्, भाण्डोपरितनभागेऽन्यमधोमुखं भाण्डं (हण्डिकासंज्ञकम्) संस्थाप्य द्वयोः सन्धिसम्मुद्रय = वह्निमृत्स्नया निरुध्य ऊर्ध्वभाण्डे = ऊर्ध्वभाण्डपृष्ठे, केनापि मृत्तिकादिना आलवालं = जलावापप्रदेशं, कृत्वा = विधाय,तस्मिन्नालवाले जलं क्षिपेत्, वा = अथवा, जलाभावे आर्द्रं = जलार्द्र स्रोतकं = चतुः पुटकं 'खादी' नाम्ना प्रसिद्धं स्वच्छ कार्पासवस्त्रखण्डं दत्वा, एतड्डमरुयन्त्रं चुल्लिकोपरि निधापयेत्, तस्य = अधोभाण्डस्याधश्चतुर्यामं = चतुः प्रहरं निरन्तरं समाग्निं प्रबोधयेत् = प्रज्वालयेत्, ऊर्ध्वभाण्डोपरिस्थितं किञ्चिदुष्णीभूतं जलं जलार्द्र प्लोतकंवा पृथक् कृत्वा तत्स्थाने शीतलंजलं जलार्द्र स्रोतकान्तरं वा स्थापयेत्, ततः = तदनन्तरमूर्ध्वभाण्डसंलग्नं

पारदं युक्तया = और्णवस्त्रेण गृह्णीयात् भिषग्भिः = रसवैद्यैः, सूत शोधने = पारदशोधने, इति = उपरिनिर्दिष्टमूर्ध्वपातनसंस्कारमुक्तं = कथितम् । अत्रानुष्टप्छन्दः ॥ ६६-७१ ॥

ज्ञातव्यम्—विधिरयं रसेन्द्रचिन्तामणित (अ० ३ । २२-२४) उद्धृतो माधवेन—रसतरङ्गिण्याः (पञ्चमतरंगे, श्लो० ७४) ऊर्ध्वं पातनस्य तृतीयः प्रकारोऽस्यैवानुवादरूपोऽस्ति, किञ्चित्पाठान्तरेण रसेन्द्रसारसंग्रहेऽप्ययं विधिरस्ति । अस्मिन्विधौ पातनार्थमर्द्ध-प्रस्थमितं द्रव्यं ग्राह्यं, चतुः प्रहराग्निनार्द्ध प्रस्थमित द्रव्यस्यैवोर्ध्व पातनानुभवात् ।

५—पातनसंस्कार ।

उ०—पातनसंस्कार के भेद—(१) ऊर्ध्वपातन (२) अधःपातन (३) तिर्यक्पातन भेद से, पातनसंस्कार तीन प्रकार का होता है ।

(१) ऊर्ध्वपातनसंस्कार ।

ऊर्ध्वपातनसंस्कार की प्रथम विधि ।

एक खरल में शुद्ध पारद तीन भाग और ताम्र (तांबा) चूर्ण एक भाग डालकर, इन दोनों को नीबू के रस से जब तक गोला (पिण्डा) न बन जाय तबतक मर्दन करे (घोटे), यदि गोला न बने तो थोड़ा शुद्ध तूतिया डालकर घोटे, तो अवश्य ही गोला बन जायगा, तब इस गोला को नीचे की हांडी में रखदे और उस हांडी के मुखपर नीचे को मुख किये हुई दूसरी हांडी को रखकर दोनों हांडियों की मुखसन्धि को पानी में पिसी

हुई आरने उपलों की राख तथा नमक द्वारा अथवा खड़िया सैन्धवनमक और मण्डूरचूर्ण को भैंस के दूध में खूब घोटकर बनाई गई वह्निमृत्स्ना नाम की मिट्टी से बन्द कर. ऊपर की हांडी के ऊपर तल भाग (पेंदे) पर मिट्टी आदि से आलबाल (थामला) बनाकर उसमें जल भरदे, अथवा जल से भीगे हुए चार या आठ पर्त किये हुये साफ कपड़े के टुकड़े को रखदे, फिर इस प्रकार बने हुये इस डमरूयन्त्र को, चूल्हे पर चढ़ाकर लगातार चार पहर (१२ घण्टे) की समान अग्नि दे, तथा ऊपर की हांडी के आलबाल (थांवले) में भरे हुये जल अथवा कपड़े को गर्म होजाने पर हटाकर, उसके स्थान में और नया शीतल जल अथवा शीतल जल से भीगा हुआ कपड़ा रखना चाहिये, फिर अग्नि बन्द कर दे और अपने आप शीतल जल होने पर, ऊपर की हांडी के तलभाग में उड़कर लगे हुये पारद को युक्तिपूर्वक ऊन के वस्त्र से पोंछकर, इकट्ठा करले, विद्वान् रसवैद्यों ने, पारद को शुद्ध करने के लिये इस ऊर्ध्वपातन को कहा है ॥ ६६-७१ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने ऊर्ध्वपातन की यह विधि, रसेन्द्रचिन्तामणि (अध्याय ३।२२।२४) से उद्धृत की है; रसेन्द्रसारसंग्रह में भी यह विधि है। रसतरङ्गिणी (पञ्चमतरङ्ग, श्लोक ७४) में वर्णित ऊर्ध्वपातन का तृतीय प्रकार, इसी विधि का अनुवादमात्र है।

इस ऊर्ध्वपातन विधि से, ऊर्ध्वपातन करने के लिये आठ पल पारद लेना चाहिये, क्योंकि अनुभव से चार पहर (१२ घण्टे) की अग्नि से, प्रायः आठ पल (३२ तोला) पारद का ही ऊर्ध्वपातन होता देखा गया है और कभी कभी अधिक

से अधिक ४० तोला (आध सेर) पारद उड़ जाता है । इस लिये ३२ तोला ही पारद, एक हांडीमें ऊर्ध्वपातन के लिये लेना चाहिये, यदि पारद अधिक हो तो पृथक् पृथक् हांडियों में बत्तीस-बत्तीस तोला पारद रखकर ऊर्ध्वपातन करे। यदि पारद बत्तीस तोला से कम [लगभग २४ या २५ तोला] होगा तो तीन पहर में उसका ऊर्ध्वपातन होजायगा । यथा—

पक्त्वा त्रिप्रहरं समेन शुचिना भाण्डे तमूर्ध्वं नयेत् ।

[रसपद्धति]

पारद की पिष्टि—यदि पारद और ताम्रचूर्ण को नीबू के रस में घोटने पर पारद की पिष्टि (पिट्ठी) न बने, तो उसमें थोड़ा नीलाथोथा डालकर घोटने से, पारद की पिष्टि बन जाती है । जैसा कि रससार ग्रन्थ में लिखा है—

यदा न जायते पिष्टिः किंचित्तुत्थं प्रयोजयेत् ।

(रससार)

मुद्रा—तीनों पारद संस्कारों में आरने उपलों [कण्डों] की राख और सैन्धवनमक को जलमें पीसकर, उससे हांडियों के मुख को मूँदकर सन्धिलेप करना चाहिये । जैसा कि रसप्रकाशसुधाकर में लिखा है—

सभस्मलवणेनैव मुद्रां तत्र प्रदापयेत् ।

(रसप्रकाशसुधाकर, अ० १)

वह्निमृत्स्ना, जलमृत्स्ना तथा कुम्हार की मिट्टी से भी मुद्रा हो सकती है ।

अत्युत्तम ऊर्ध्वपातन संस्कार-यदि पारद का अत्यन्त उत्तम ऊर्ध्वपातनसंस्कार करना हो, तो प्रथमबार के ऊर्ध्व-पातन से उड़े हुये पारद को, फिर पहिली भांति ताम्रचूर्ण के साथ नीबू के रस में घोटकर ऊर्ध्वपातन करे, इस प्रकार सात बार पारद का ऊर्ध्वपातन करना चाहिये, यदि सात बार न होसके तो तीन बार तो ऊर्ध्वपातन अवश्य ही करना चाहिये, जैसा कि रसशास्त्रों में लिखा है--

१--ताम्रपादयुतं सूतं मर्दयेदम्लकैः सह ।
तत्पिष्टिं पातयेद्यन्त्रे ह्यूर्ध्वपातनके पुनः ॥
आदाय मर्दयेत्तद्वत्ताम्रचूर्णेन संयुतम् ।
पातयेन्मर्दयेच्चैव ताम्रं दत्वा पुनः पुनः ॥
इत्येवं सप्तधा कुर्यान्मर्दनं पातनं क्रमात् ॥
(रसरत्नाकरे)

२--शुल्वेन पातयेत्पिष्टिं त्रिधोर्ध्वं सप्तधा त्वधः ।
३--त्रिधोर्ध्वपातनात्पात्यः पादांशार्कयुतः शुचिः ।
(रससंकेतकलिका, उल्लास १)

(सन्धिकौशलम्)

*सप्ततभाण्डरन्ध्रे तु ह्यन्यद्विशति भाण्डकम् ।
तथासन्धिद्वयोः कार्यः पातनात्रययन्त्रके ॥७२॥

(यन्त्रप्रमाणम्)

यन्त्रप्रमाणं वदनाद्गुरोर्ज्ञेयं विचक्षणैः ।

---

* 'सप्ततभाण्डवदनमन्यद्विगलति भाण्डकम्' इति पाठान्तरं रसेन्द्रचिन्तामणौ ।

रसस्य मानानियमात्कथितुं नैव शक्यते ॥७३॥

प्र०—सन्धिकौशलमाह— ससूतेति— पातनात्रययन्त्रके =ऊर्ध्वाधस्तिर्यकपातनात्रययन्त्रे, द्वयोः भाण्डयोः सन्धिः तथा = तादृशकौशलेन कार्यः, यथा ससूतभाण्डरन्ध्रे = सपारदाधोभाण्डमुखे, अन्यद्भाण्डकम् = ऊर्ध्वभाण्डं, ऊर्ध्वभाण्डमुखमित्यर्थः विशति = प्रविशति ॥ अत्रानुष्टप् छन्दः ॥७२॥

ज्ञातव्यम्—श्लोकोऽयं रसेन्द्रचिन्तामणित (अ० ३।२५) उद्धृतो माधवेन ।

प्र०—यन्त्रप्रमाणमाह—यन्त्रप्रमाणमिति—विचक्षणैः = चतुरै रससाधकैः गुरोर्वदनात् = रसशास्त्राचार्यस्य मुखात् यन्त्रप्रमाणं ज्ञेयं, यतोहि रसस्य = पारदस्य मानानियमात् यन्त्रप्रमाणं कथितुं नैव शक्यते ॥ अत्रानुष्टप् छन्दः ॥७३॥

ज्ञातव्यम् = श्लोकोऽयं रसेन्द्रचिन्तामणितः (अ० ३।२६) उद्धृतो माधवेन ।

सन्धि करने में चतुरता ।

उ०—ऊर्ध्व अधः और तिर्यक् पातन में दोनों हांडियों के मुख की सन्धि को ऐसी चतुराई से बन्द करे कि पारद भरी हुई नीचे की हांडी के मुख में ऊपर की हांडी का मुख प्रविष्ट होजाय (घुस जाय) ॥६२॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक, रसेन्द्रचिन्तामणि से उद्धृत किया है ।

यन्त्र का प्रमाण।

उ०—चतुर रसवैद्यों को डमरूयन्त्र का प्रमाण अपने रसशास्त्र के गुरु (आचार्य) से जानना चाहिये, क्योंकि संस्कार के लिये गये पारद के ठीक परिमाण के निश्चित न होने से ऊर्ध्वपातन अथवा डमरूयन्त्र का प्रमाण नहीं कहा जा सकता, इसलिये अपने गुरुजी से पूछ कर पारद के अधिक अथवा थोड़े परिमाण के अनुसार बड़ा अथवा छोटा ऊर्ध्वपातन यन्त्र अथवा डमरूयन्त्र बनावें ॥७२॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक, रसेन्द्रचिन्तामणि से (अ० ३।२५) से उद्धृत किया है।

ऊर्ध्वपातनयन्त्र का लक्षण तथा प्रमाण रसप्रकाश-सुधाकर में निम्न लिखित रूप से लिखा है—

ऊर्ध्वपातन यंत्रस्य लक्षणं तदिहोच्यते।
मृन्मयी स्थालिका कार्या चोच्छ्रिता तु षडङ्गुला॥
मुखे सप्ताङ्गुला कार्या परितस्त्रिदशाङ्गुला।
इयन्माना द्वितीया च कर्तव्या स्थालिका शुभा॥
क्षारद्वयं रामठं च तथा हि पटुपञ्चकम्।
अम्लवर्गेण संयुक्तं सूतं तैस्तु विमर्दयेत्॥
लेपयेत्तेन कल्केन ह्यधस्थां स्थालिकां शुभाम्।
उपरिस्थामधोवक्त्रां दत्वा सम्पुटमाचरेत्॥
सभस्मलवणेनैव मुद्रां तत्र प्रदापयेत्।
चुल्ल्यां स्थालीं निवेश्याथ धान्याग्निं तत्र कारयेत्॥
तस्योपरि जलाधानं चतुर्यामावधि कुरु।

स्वाङ्गशीतलतां ज्ञात्वा ह्यूर्ध्वगं ग्राह्येद्रसम् ॥
ऊर्ध्वपातनयन्त्रं हि तदेवं परिकीर्तितम् ॥
(रसप्रकाशसुधाकर अ० १)

अथान्यन्मतम् ।

(द्वितीयोविधिः)

मयूरग्रीवताप्याभ्यां नष्टपिष्टीकृतस्य च ।
+यन्त्रे डमरुके कुर्याद्रसस्योर्ध्वपातनम् ॥७४॥

मयूरग्रीवं तुत्थकं ताप्यं स्वर्णमाक्षिकं, नष्टपिष्टीकृतस्य च 'कुमारिकाद्रवयोगेन' इतिशेषः ।

प्र०—मतान्तरमाह— मयूरग्रीवेति–मयूरग्रीवताप्याभ्यां = तुत्थसुवर्णमाक्षिकाभ्यां = सह घृतकुमारीस्वरसयोगेनमर्दनान्नष्टपिष्टीकृतस्य पारदस्य डमरुकेयन्त्रे, रसस्य = पारदस्योर्ध्वपातनं कुर्यात् यथाप्रोक्तं रससारे-'यन्त्रे डमरुकं कुर्यात्पातने ह्युत्तमोत्तमम् । अत्रानुष्टप् छन्दः ॥७४॥

ज्ञातव्यम्—विधिरयं भावप्रकाशादुद्धृतो माधवेन । रसतरङ्गिण्याः (पञ्चमतरङ्गे ७२–७३ श्लो०) ऊर्ध्वपातनस्य द्वितीयः प्रकारोऽस्यैवानुवादरूपो ऽस्ति ।

उ०—नीलाथोथा और स्वर्णमाक्षिक (सोनामाखी) के साथ पारद को घृतकुमारी (ग्वारपाठा) के रस से

+यन्त्रे विद्याधरे कुर्याद्रसेन्द्रस्योर्ध्वपातनम् । इतिपाठान्तरं भावप्रकाशे, तत्रैव विद्याधरयन्त्रे = डमरुके इति विवरणम् ।

जब तक कि पारद अलग न दीखे तब तक मर्दन करे (घोटे), फिर उस पारद को डमरू यन्त्र में रख कर उड़ादे, यह ऊर्ध्वपातन कहा जाता है ॥७४॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह विधि, भावप्रकाश से उद्धृत की है, रसतरङ्गिणी के पञ्चमतरंग (श्लो० ७२।७३) में वर्णित उर्ध्वपातन का द्वितीय प्रकार, इसी विधि का अनुवाद मात्र है।

ऊर्ध्वपातन संस्कार—ऊर्ध्वपातन यन्त्र अथवा डमरू यंत्र में ही भली भाँति होता है वैसे तो बालुकायंत्र (चक्र यंत्र) में भी हो सकता है। जैसा कि रससार ग्रन्थ में लिखा है—

यन्त्रं डमरुकं कुर्यात्पातने ह्युत्तमोत्तमम् ।
अथवा चक्रयन्त्रेऽपि ह्यूर्ध्वपातनमुत्तमम् ॥

२–अथाधः पातनम् ।

(प्रथमो विधिः)

त्रिफलाशिग्रुचित्रैश्च+ लवणासुरिकायुतैः ।
नष्टपिष्टं रसं कृत्वा *लेपयेदूर्ध्वभाण्डके ॥७५॥
ऊर्ध्वभाण्डोदरे लिप्त्वा ह्यधोभाण्डे जलं क्षिपेत् ।
सन्धिलेपं द्वयोः कृत्वा तद्यन्त्रं भुवि पूरयेत् ॥७६॥
उपरिष्टात्पुटे दत्ते जले पतति पारदः ।
अधःपातनमित्युक्तं सिद्धाद्यैः सूतकर्मणि ॥७७॥

+ 'शिखिभिर्लवणासुरिसंयुतैः' ।
* 'लेपयेच्चोर्ध्वभाजने' इति च पाठान्तरं रसरत्नसमुच्चये ।

त्रिफलेति व्याख्याता । अधोभाण्डे जलंक्षिपेदिति वचना-त्सम्पुटपात्रमध्येजलं प्राप्यते, तच्च सम्प्रदायविरुद्धम्, अतः सम्पूर्णाम्बुनि पात्रान्तरे भूमौनिखातिते तस्योपरि सम्पुटं दद्यात् पश्चात् तस्य सम्पुटस्याधः पात्रस्य च सन्धिरोधः कार्य इति तात्पर्यतो ज्ञेयम् । उपरिष्टात्पुटे दत्ते इति पुटं चात्र कौक्कुटं यथायथं रसमात्रापेक्षया वा विंशतिवनोपलैरधिकैर्वा निवातस्थले शनैः शनैर्देयमिति गुरुसम्प्रदायः ।

प्र०—अधःपातनस्य प्रथमविधिमाह–त्रिफलेति = त्रिफला, शिग्रु = शोभाञ्जनः, चित्रः = चित्रकः तैरेतैः लवणासुरिकायुतैः = सैन्धवराजिकासहितैरौषधैः, सह घृतकुमारीस्वरसेन रसं = पारदं, नष्टपिष्टं कृत्वा उपर्युक्तौषधैः सह मर्दनेनापगतस्वरूपमेकीभूतमित्यर्थः, औषधैः = सह पारदस्य तावन्मर्दनं कर्तव्यं यावत्पारदः पृथक् न दृश्यते इति भावः, इत्थं रसं नष्टपिष्टं कृत्वा ऊर्ध्वभाण्डे जलं क्षिपेत् = भूमौनिखातिते सम्पूर्णाम्बुनि अधःपात्रे सम्पुटं दद्यात्, तदनन्तरं द्वयोः = सम्पुटाधःपात्रयोः सन्धिलेपं = सन्धिरोधं कृत्वा तदधःपातनयन्त्रं भुवि पूरयेत्, उपरिष्टात् = ऊर्ध्वभाण्डोपरिभागात् पुटे = कौक्कुटेपुटे दत्ते सति पारदो जले पतति, सिद्धाद्यैः = रससिद्धादिभिः सूतकर्मणि = पारदकर्मणि, इत्येतदधःपातनमुक्तम् । अत्रानुष्टुप् छन्दः ॥७५–७७॥

ज्ञातव्यम्—अत्र पञ्चसप्ततितमः श्लोको रसरत्नसमुच्चयादुद्धृतो माधवेन, भावप्रकाशेऽप्येषोऽस्ति, त्रिफलेत्यादि मूलव्याख्याने 'सम्पुटपात्रमध्ये इत्यारभ्य शनैः शनैर्देयमित्येतावान्' व्याख्यानांशो रसपद्धतिटीकात उद्धृतो माधवेन । रसतरङ्गिण्याः (पंचमतरंगे, श्लो० ७८–७९) अधःपातनस्य द्वितीयः प्रकारो-

ऽस्यप्रथमविधे रेवानुवादरूपोऽस्ति किन्तु तत्र त्रिफलामध्यादामलकंपरित्यक्तं रसतरङ्गिण्याम् ।

अधः पातन संस्कार ।

प्रथम विधि ।

उ०—त्रिफला, सँहजना, चित्रक (चीता), सैन्धव और राई के साथ पारद को घृतकुमारी के स्वरस से इतना घोटे कि पिट्ठी बन जाय, जिससे वह पारद अलग न दीखे, फिर पारद की इस पिट्ठी को ऊपर की हाँडी के भीतर के तले (पेंदे) में लेप करदे । अब पानी से भरी हुई एक दूसरी हांडी को पृथ्वी में खोदे हुए एक गढे में रखदे, और इस नीचे की हांडी के ऊपर, पारद से लिपी हुई तथा नीचे को मुख किये हुई ऊपर की हांडी को रख कर, इन दोनों हांडियों का मुख मिला कर, ऊपर से पानी से पिसी हुई साफ राख और नमक से सन्धि लेप करदे । अब इस अधःपातन (डमरू यन्त्र अथवा भूधर यन्त्र) के ऊपर कुक्कुट पुट (दो बलिश्त गहरे गढ़े में दिया हुआ पुट) में वायुरहित स्थान में दे । अधिक पारद होने पर बीस अथवा अधिक आरने उपलों (कंडों) का पुट दे, इस पुट द्वारा गर्म हुआ पारद नीचे की हाँडी के जल में गिरेगा । रस सिद्धों ने पारद संस्कार के प्रकरण में यह अधःपातन संस्कार कहा है, इसमें तीन पहर (६ घण्टा) समय लगता है ॥७५॥७-७॥

ज्ञातव्य—इस विधि में 'अधोभाण्डे जलं क्षिपेत्' साधारणतया इस पद का 'सम्पुट के नीचे की हांडी में जल

डालें' यह अर्थ किया जाता है परन्तु ऐसा करने पर अधः पातन यन्त्र न बनने पर संस्कार नहीं हो सकता, क्योंकि सम्पुट हो जाने पर नीचे की हांडी में जल नहीं डाला जा सकता, इसलिये गुरु सम्प्रदाय के अनुसार इसका अर्थ नीचे लिखे प्रकार से करना उचित है—

पानी से भरी हुई दूसरी हाँडी को पृथिवी में खोदे हुए गढ़े में रख दे और इसके ऊपर पारद से लिपी हुई अधोमुखी हाँडी रख सम्पुट बना कर इस ऊपर तथा नीचे की हाँडियों का मुख सन्धि लेप से बन्द कर देना चाहिये, यह मुख्य अर्थ समझना चाहिये। यहाँ इस अधःपातन यन्त्र में ऊपर की हांडी के ऊपर जो पुट देने के विधान में 'कुक्कुट पुट' दे, यदि पारद अधिक मात्रा में हो तो बीस अथवा अधिक अरने उपलों का पुट वायुरहित स्थान में देना चाहिये, ऐसा गुरु सम्प्रदाय है।

विशिष्ट ज्ञातव्य—माधव ने इस विधि का पचहत्तरवां ७५ श्लोक, रसरत्नसमुच्चय (अ० ७।१) से उद्धृत किया है, भाव प्रकाश में भी यह श्लोक है।

माधव ने इस विधि के अन्त में श्लोकों की व्याख्या के प्रकरण में 'सम्पुटपात्र मध्ये' पद से लेकर 'शनै शनैर्दयम्' तक का व्याख्या का भाग, रसपद्धति टीका (पृष्ठ १२) से उद्धृत किया है।

रसतरङ्गिणी (तरङ्ग ५।७८-७६) में वर्णित अधःपातन का द्वितीय प्रकार, आयुर्वेदप्रकाश की इसी प्रथमविधि का

अनुवादमात्र है, परन्तु रसतरङ्गिणी में वर्णित अधःपातन के द्रव्यों में 'आमला' नहीं लिया गया है।

अथान्यन्मतम् ।

(द्वितीयो विधिः)

नवनीताह्वयं* सूतं+ घृष्ट्वा जम्भाभसा दिनम् ।
वानरीशिग्रुचित्रैश्च लवणासुरिकायुतैः ॥७८॥
'नष्टपिष्टं रसंकृत्वा' इत्यादि पूर्ववत् (पाठः) ॥

प्र०—मतान्तरेण द्वितीयविधिमाह—नवनीतेति—नवनीताह्वयं = नवनीतनामकं गन्धकं आमलासारगन्धकनाम्ना प्रसिद्धं गन्धकं, सूतं = पारदं समभागिकं गृहीत्वा जम्भाभसा = जम्बीररसेन घृष्ट्वा सम्मर्द्य, वानरी = कपिकच्छुः, शिग्रुः = शोभाञ्जनः, चित्रः = चित्रकः, लवणं = सैन्धवम्, आसुरिका, एभिरौषधैर्युतैः = सहितैः, रसं - पारदं नष्टपिष्टं = मर्दनेनापगतस्वरूपं कृत्वा पूर्वोक्तेनाधः पातनयन्त्रेणाधः पातनं कुर्यात् ॥ अत्रानुष्टप्छन्दः ॥७८॥

ज्ञातव्यम्—एषविधी रसेन्द्रचिन्तामणित उद्धृतो माधवेन रसेन्द्रसारसंग्रहेऽप्यस्ति । रसतरङ्गिण्या अधःपातनस्य प्रथमः प्रकारः (पंचमतरंगे, ७४ श्लोके) अस्यैवानुवादरूपोऽस्ति । नवनीताह्वयस्थाने क्वचिन्नवनीताभ्रकमिति पाठः । तत्र नवनीत प्रायं द्रुतिरूपमभ्रकं अभ्रकस्यनवनीतप्राया द्रुतिरित्यर्थः ।

---

* नवनीताभ्रकम् इति पाठान्तरं मुम्बय्यां मुद्रितायुर्वेदप्रकाशे रसकामधेनावुद्धृतपाठे च ।

\+ गन्धम् इति पाठान्तरं रसेन्द्रसारसंग्रहे ।

द्वितीयविधि ।

उ०—शुद्ध आमलासार गन्धक तथा शुद्ध पारद को समान भाग लेकर जंभीरी के रस में एक दिन घोटकर, कौंच, सँहजना, चित्रक, सैन्धवनमक तथा राई के साथ पारद को को इतना घोटे कि उसकी पिट्ठी बनजाय जिससे कि पारद अलग न दीखे, फिर इस पारद का पहिली विधि की भांति, अधःपातन यन्त्र से अधःपातन संस्कार करे। प्रायः इस अधः पातन में ३ पहर (६ घण्टे) लगते हैं ॥ ७८ ॥

ज्ञातव्य--माधव ने यह विधि, रसेन्द्रचिन्तामणिसे उद्धृत की है, रसेन्द्रसारसंग्रह में भी यह विधि है। रसतरङ्गिणी (पञ्चमतरङ्ग, श्लोक ७४) में वर्णित अधःपातन का प्रथम प्रकार इसी विधि का अनुवाद मात्र है।

बम्बई की आयुर्वेदीय ग्रन्थमाला में मुद्रित आयुर्वेद-प्रकाश में तथा रसकामधेनु में रसेन्द्रचिन्तामणि से उद्धृत पाठ में 'नवनीताह्वयं' के स्थान में 'नवनीताभ्रकं' पाठ मिलता है, इस पाठ के मानने पर 'मक्खन के समान द्रुतिरूप अभ्रक अर्थात् अभ्रक की मक्खन के समान द्रुति' यह अर्थ होता है। परन्तु आजकल प्रचलित तथा मुद्रित रसेन्द्रचिन्तामणि में 'नवनीताह्वयं' यह ही पाठ मुद्रित है।

उत्तम अधःपातन—यदि पारद का उत्तत अधःपातन संस्कार करना हो तो यह सात बार करना चाहिये।
यथा—सप्तधा त्वधः।　　　　(रसरत्नसमु०, अ० ११)

अधःपातन—अधःपातनसंस्कार-अधःपातनयन्त्र, डमरू यन्त्र तथा भूधरयन्त्र में होता है। रसपद्धति के टीकाकार ने अधःपतनयन्त्र का अर्थ डमरूयन्त्र किया है।

यथा— अधःपातनयन्त्रन्तु प्रागुक्तं तच्च डमरूकाख्यम् ।

परन्तु भावप्रकाश में स्पष्ट रूप से भूधरयन्त्र में अधःपातन लिखा है । यथा—

ततो दीप्तैरधः पातमुपलैस्तस्य कारयेत् ।
यन्त्रे भूधरसञ्ज्ञे तु ततः सूतो विशुद्ध्यति ॥
(भावप्रकाश)

इस मतविभिन्नता का यह कारण है कि इन तीनों यन्त्रों की बनावट में बहुत कुछ समानता है, इसलिये इन तीनों से ही अधःपातन संस्कार हो जाता है । प्रायः तीन पहर (९ घण्टे) में पारद का अधःपातन हो जाता है । यथा—

यामत्रितयपर्यन्तमधः पतति पारदः ॥
(रसप्रकाशसुधाकर—अ० १)

(३) अथतिर्यक्पातनम् ।

घटे रसं विनिक्षिप्य सजलं घटमन्यकम् ।
तिर्यङ्मुखं द्वयोः कृत्वा संमुखं रोधयेत्सुधीः ॥७९॥
चुल्ल्यां तथैव संस्थाप्य यत्नतस्तु ततो भिषक् ।
रसाधो ज्वालयेदग्निं यावत्सूतो जलं विशेत् ॥८०॥
तिर्यक्पातन मित्युक्तं सिद्धैर्नागार्जुनादिभिः ॥८१॥

प्र०—तिर्यक् पातमाह—घट इति—सुधीः = विद्वान् रसवैद्यः घटे = एकस्मिन घटे रसं = पारदं विनिक्षिप्य = निधाय अन्यकं = द्वितीयं सजलं = जलपूरितं घटं च गृहीत्वा, द्वयोः = घटयोर्मुखं

तिर्यक् कृत्वा सम्मुखं यथा स्यात्तथा सन्धिलेपनेन रोधयेत्। ततः =तदनन्तरं भिषक्=रसवैद्यः, तथैव रुद्धमुखं घटद्वयं पृथक् पृथक् चुल्ल्यां यत्नतः=यत्नपूर्वकं संस्थाप्य, रसाधः=पारदघट-स्याधस्तावत्तीव्राग्निं ज्वालयेत्=प्रज्वालयेत् यावत्सूतः=पारदो जलं विशेत्=जलघटान्तःपाती स्यात् ,नागार्जुनादिभिःसिद्धै रित्येत त्तिर्यक्पातनमुक्तम् ॥ ७६–८१ ॥

ज्ञातव्यम्—एषतिर्यक्पातनविधी रसेन्द्रचिन्तामणित उद्धृतो माधवेन, रसेन्द्रसारसंग्रहेऽप्येष विधिरस्ति ।

(३) तिर्यक्पातन संस्कार की विधि ।

उ०—विद्वान् रसवैद्य, समान भाग धान्याभ्रक और शुद्ध पारद को कांजी में घोट कर पिट्ठी बनाले, फिर इस पारद को एक बड़े घड़े में रखदे और एक दूसरे घड़े में जल भरदे, फिर इन दोनों घड़ों को कुछ तिरछा कर, इनके मुख को जल में पिसी हुई राख और नमक से सन्धि लेप कर बन्द करदे, फिर रसवैद्य, इन दोनों घड़ों को अलग अलग चूल्हे पर चढ़ा कर, पारद भरे हुए घड़े के नीचे तब तक तीव्र अग्नि जलावे, जब तक कि पारद उड़ कर दूसरे जल भरे हुए घड़े में न पहुंच जाय, प्रायः इसमें तीन पहर (६ घण्टे) जल जाते हैं। नागार्जुन आदि सिद्ध पुरुषों ने इसको तिर्यक्पातन कहा है ॥ ७६–८१ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह तिर्यक्पातन विधि, रसेन्द्र-चिन्तामणि (अ० ३।३०-३१) से उद्धृत की है। रसेन्द्रसार-संग्रह में भी यह विधि है। तिर्यक्पातन करने से पहिले पारद को समान भाग अभ्रक के साथ कांजी में घोट कर पिट्ठी बना लेनी चाहिये ।

यथा — धान्याभ्रकं रसं तुल्यं मर्दयेदारनालकैः ।
नष्टपिष्टं तु तत्पात्यं तिर्यक्यन्त्रे दृढाग्निना ॥
(रसरत्नाकरे)

प्रायः इस तिर्यक्पातन संस्कार में, तीन पहर (६ घंटे) में पारद उड़ कर दूसरे जल से भरे हुये घड़े में पहुँच जाता है। यथा—

अधस्ताद्रसयन्त्रस्य तीव्राग्निं ज्वालयेदधः ।
यामत्रितयपर्यन्तं तिर्यक्पातो भवेद्रसः ॥
(रसप्रकाशसुधाकर अ० १)

पातन यन्त्रों में मुद्रा—इन तीनों पातनयन्त्रों में आरने उपलों की राख और नमक को जल में घोल कर सन्धि लेप करना चाहिये। यथा—

सभस्मलवणेनैव मुद्रां तत्र प्रदापयेत् ।
(रसप्रकाशसुधाकर अ० १)

(पातनकर्मफलम्)

मिश्रितौ चेद्रसे नागवङ्गौ विक्रयहेतुना ।
ताभ्यां स्यात्कृत्रिमो दोषस्तन्मुक्तिःपातनत्रयात् ॥८२॥
एवं सुसंस्कृतः सूतः पातनावधि यत्नतः ।
सर्वदोषविनिर्मुक्तो जायते नात्र संशयः ॥८३॥

प्र०—पातनकर्मफलमाह मिश्रिताविति—विक्रेतृभिर्विक्रय-हेतुना रसे = पारदे, नागवङ्गौ मिश्रितै चेत्तर्हि ताभ्यां = नागवङ्गाभ्यां

पारदे नागवङ्गरूपःकृत्रिमः = यौगिकः, औपाधिको दोषःस्याद्,उक्तं च यथा—

(१) यौगिकौ नागवङ्गौ द्वौ तौ जाड्याध्मानकुष्टदौ ॥१६॥
(आयुर्वेदप्रकाशे प्रथमाध्याये)

(२) औपाधिकौ द्वौ त्रपुनागसम्भवौरसे न्द्रराजे कथयन्ति वैद्याः,

अस्य नागवङ्गमिश्रणजन्यस्य कृत्रिमदोषस्य पातनत्रयात् ऊर्ध्वाधस्तिर्यकपातनत्रयसंस्कारात् मुक्तिःस्यात् । एवमित्थं, पातनावधि = पातनसंस्कारपर्यन्तं यत्नतः = यत्नपूर्वकं सुसंस्कृतःसूतः = पारदः,सर्वदोषविवर्जितः = नागादिदोषरहितो जायते, अत्र संशयो नास्ति ॥ अत्रानुष्टुप् छन्दः ॥ ८२–८३ ॥

ज्ञातव्यम्—अत्र ८२ संख्यकः श्लोको रसेन्द्रचिन्तामणित उद्धृतो माधवेन ।

ऊर्ध्व अधः तथा तिर्यक् पातन संस्कारों का फल ।

उ०—पारद बेचने वाले लोभी व्यापारियों द्वारा बिक्री में लाभ प्राप्त करने के लिये पारद में नाग (सीसा) और बंग (रांगा) धातु मिला दिये जाते हैं, इनके मिला देने से पारद में, नाग तथा वंग रूप कृत्रिम (यौगिक, औपाधिक) दोष उत्पन्न हो जाता है, ऊर्ध्व पातन अधःपातन और तिर्यक् पातन द्वारा, पारद का यह कृत्रिम दोष निकल जाता है, इस प्रकार पातनसंस्कार पर्यन्त, यत्न पूर्वक संस्कारों से संस्कृत (शुद्ध) पारद, नाग आदि सब दोषों से रहित हो जाता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ८२–८३ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने इन श्लोकों में से ८२ वां श्लोक रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० ३।३२) से उद्धृत किया है ।

६ अथ बोधनम्।

(बोधन संस्कारस्यावश्यकता लक्षणञ्च)

एवं कदर्थितः सूतः षण्ढत्वमधिगच्छति।
मुक्तये[१] क्रियये तस्य बोधनं कथ्यते हि तत् ॥८६॥

वाग्भटोऽपि—

मर्दनैर्मूर्च्छनैः पातैर्मरणान्तो[२] भवेद्रसः
शक्त्युत्कर्षाय बोध्योऽसौ गुरुदर्शितवर्त्मना ॥८७॥

प्र०—बोधनसंस्कारस्यावश्यकतां लक्षणञ्चाह—एवमिति—एवं मर्दनमूर्च्छनपातनादिभिःकदर्थितःसूतः = पारदःषण्ढत्वं = नपुंसकत्वं, क्लैब्यमधिगच्छति प्राप्नोति, तस्य = नपुंसकत्वस्य मुक्तये = पारदस्य यत्संस्कारकर्म क्रियते तद्धि बोधनं कथ्यते। अत्रानुष्टप् छन्दः ॥ ८६ ॥

ज्ञातव्यम्—श्लोकोऽयंरसेन्द्रचिन्तामणितः (अ०३श्लो०३३) उद्धृतो माधवेन रसेन्द्रसारसंग्रहेऽप्यस्ति।

प्र०—अत्रार्थे वाग्भटस्यसम्मतिमप्याह—मर्दनैरिति—मर्दनादिसंस्कारैः, रसः—पारदो मरणान्तः = नपुंसकत्वेन मृतप्रायो भवेत्, अतोऽसौ = पारदः शक्त्युत्कर्षाय = बलाधानार्थं गुरुदर्शित-

---

१ 'तन्मुक्तयेऽस्यक्रियते' इति पाठान्तरं रसेन्द्रचिन्तामणौ रसेन्द्रसारसंग्रहेच।

२ मन्दः शान्तोभवेद्रसः, इति पाठान्तरं मुद्रितरसरत्नसमुच्चयेषु।

३ श्लोकस्यैष उत्तरार्धो मुद्रितरसरत्नसमुच्चयेषु नोपलभ्यते।

वर्त्मना = आचार्यप्रदर्शित मार्गेण, बोध्यः = बोधनसंस्कारेण-योज्यः । अत्रानुष्टप् छन्द ॥ ८७ ॥

ज्ञातव्यम्—श्लोकोऽयं वाग्भटरचितरसरत्नसमुच्चय,(अ० ११) ग्रन्थादुद्धृतो माधवेन, तत्रास्योत्तरार्धो नोपलभ्यते ।

(६) बोधन संस्कार ।

बोधन संस्कार की आवश्यकता तथा उसका लक्षण ।

उ०—इस प्रकार मर्दन मूर्च्छन तथा पातन संस्कारों से संस्कृत हुआ पारद, नपुंसकता को प्राप्त हो जाता है, इस नपुंसकता को दूर करने के लिये पारद का जो संस्कार किया जाता है, यह बोधन संस्कार कहलाता है ॥८६॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक, रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० ३ श्लो० ३३) से उद्धृत किया है, रसेन्द्रसारसंग्रह में भी यह श्लोक है ।

आचार्य वाग्भट की सम्मति ।

उ०—मर्दन मूर्च्छन तथा पातन संस्कार से पारद नपुंसक होने के कारण मृतप्राय हो जाता है, इसलिये बल बढ़ाने के लिये उसका बोधन संस्कार करना चाहिये ॥८७॥

ज्ञातव्व—माधव ने यह श्लोक, वाग्भट रचित रसरत्न-समुच्चय (अ० ११) से उद्धृत किया है, परन्तु वर्तमान समय में मुद्रित रसरत्नसमुच्चय में इस श्लोक का उत्तरार्थ नहीं मिलता है ।

बोधन अथवा रोधन—रसहृदय, रसेन्द्रचूड़ामणि, रसरत्नाकर, रसरत्नसमुच्चय तथा रसप्रकाशसुधाकर रससार तथा रसमार्तण्ड आदि रसग्रन्थों में 'बोधन' के स्थान में रोधन् अथवा निरोधन संस्कार नाम मिलता है ।

(पुनः स्वेदनम्)

अत्रावसरे केचित्पुनःस्वेदनमिच्छन्ति; यथा—

रसे चतुर्गुणे वस्त्रे सरसोनशरावके ।
नियन्त्र्य २दोलिकायंत्रे मध्याग्नौ दिवसं पचेत् ॥८४॥
सव्योषत्रिफला वह्निकन्याकल्के तुषाम्बुनि ।
३दोषशेषापनुत्त्यर्थमिदं स्वेदनमिष्यते४ ॥८५॥

प्र०—मतान्तरेण पुनः स्वेदनमाह रसमिति-स्पष्टम्, व्याख्यातश्चायं स्वेदनविधौ ४७ संख्याके श्लोके प्राक् । अत्रानुष्टुप् छन्दः ॥ ८४–८५ ॥

ज्ञातव्यम्—एष विधिःप्रागपि ४७ संख्याके श्लोके वर्णितः य गरत्नाकरेऽपिचास्ति ।

पारद का पुनः स्वेदन ।

उ०—कुछ आचार्य पातन संस्कार करने के पश्चात

१ रसोनक शरावके— इति पाठान्तरं योगरत्नाकरे
२ दोलयन्त्रे तु प्रकल्प्य— " "
३ शेषदोष— " "
४ स्वेदनमीरितम्— " "

शेष दोषों को नष्ट करने के लिये फिर दुबारा स्वेदन संस्कार किया करते हैं।

पारद का सोलहवां भाग सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, चित्रक और घृतकुमारी का गूदा पृथक् पृथक् लेकर, इन सब को पीस कल्क बना कर उस कल्क में पारद को रखे, फिर एक चौलड़ कपड़े में भोजपत्र बिछा, उस पर पारदयुक्त कल्क को रख पोटली बनाले और उसको आठ पल लहसनयुक्त कांजी में दोलायंत्र द्वारा एक दिन रात पका कर स्वेदन करे, यदि पारद का उत्तम स्वेदन संस्कार करना हो, तो तीन दिन तक स्वेदन करना चाहिये। सूक्ष्म रूप से बचे हुए दोषों को नष्ट करने के लिये यह स्वेदन संस्कार दुबारा किया जाता है ॥८४-८५॥

ज्ञातव्य—वह स्वेदन विधि, पहिले भी आयुर्वेदप्रकाश के स्वेदनप्रकरण में (तीसरी विधि) ४७ वें श्लोक मे वर्णन की जा चुकी है। योगरत्नाकर में भी यह विधि है।

यथा-(बोधनस्य प्रथमोविधिः)

विश्वामित्रकपाले वा काचकूप्यामथापि वा।
सृष्टयम्बुजं विनिक्षिप्य तत्र तन्मज्जनावधि ॥८८॥
पूरियोऽत्रिदिनं भूम्यां *राजहस्तप्रमाणतः।

* 'राजहस्त' इति पाठान्तरं रसेन्द्रसारसंग्रहे, रसकामधेना उद्धृते च पाठे।

अनेन सूतराजोऽयं षण्ढभावं विमुच्यति॥ ८९ ॥

विश्वामित्रकपालं नारिकेलिपात्रं, 'सृष्ट्यम्बुजं सैन्धववारि' इत्येके, अपरे तु 'मूत्रं रजः शुक्रं च' इत्याहुः। युक्तं तु सृष्ट्यम्बुजमरुग्णायाः षोडशवार्षिक्याः स्त्रिय आर्तवम् । राजहस्तः सपादकरः ।

प्र०—बोधनस्य प्रथमविधिमाह—विश्वामित्रेति—तत्र विश्वामित्रकपाले = नारकेलपात्रे, नारिकेलखर्परे, अथ काचकूप्यां = काचपात्रेऽपि वा पारदं संस्थाप्य तन्मज्जनावधि = पारदमग्नतापर्यन्तम् सृष्ट्यम्बुजं = अरुग्णायाः षोडशवार्षिक्याः स्त्रिय आर्त्तवम्, यथोक्तं–"गोऽजाविनरनारीणां मूत्रं शुक्रं च शोणितम्। सृष्ट्यम्बुजं समाख्यातं षण्ढदोषविनाशकम्" विनिक्षिप्य राजहस्त-प्रमाणतः = सपादकरप्रमाणतः, राजहस्तः, गजहस्तः, सपादकर इत्यनर्थान्तरम्, स च त्रिंशदङ्गुलिमितो भवति, यथोक्तं–"साधारण नराङ्गुल्या त्रिंशदङ्गुलिको गजः"भूम्यां = पृथिव्यां त्रिदिनं = दिवसत्रयं पूरयेत् स्थापयेच्च। अनेन–बोधनसंस्कारेण, अयं सूतराजः = पारदः,षण्ढभावं = नपुंसकत्वं विमुञ्चति—परित्यजति ॥ अत्रानुष्टप्छन्दः ॥ ८८–८९ ॥

ज्ञातव्यम्—एषविधी रसेन्द्रचिन्तामणित (अ० ३ श्लोक ३४–३५) उद्धृतो माधवेन। रसेन्द्रसारसंग्रहेऽप्ययमस्ति।

बोधनसंस्कार की प्रथमविधि।

नारियल के पात्र अथवा काँच की शीशी में पारद डाल कर, उसमें सोलह वर्ष की नीरोग (स्वस्थ) युवती स्त्री का आर्त्तव (रज) इतना डाले कि जिसमें वह पारद डूब जाय,

फिर उसका मुख भली भांति मिट्टी से बन्द कर, पृथिवी में सवा हाथ गहरे खोदे हुये गढ़े में भी तीन दिन बन्द रहने दे, इस बोधनसंस्कारसे पारदकी नपुंसकता दूर होजाती है ८८ ८९

ज्ञातव्य—माधव ने यह विधि, रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० ३ श्लोक ३४-३५) से उद्धृत की है। रसेन्द्र सारसंग्रह में भी यह विधि है।

राजहस्त—इसको गजहस्त भी कहते हैं, यह सवा हाथ अर्थात् तीस अंगुल का होता है। यथा—

साधारणनरांगुल्या त्रिंशदंगुलिको गजः।

सृष्ट्यम्बुज—इस शब्द के सोलह वर्ष की स्वस्थ तरुणी स्त्री का आर्त्तव तथा सैन्धवनमक और जल, यह दो अर्थ रसशास्त्र में प्रसिद्ध है। यथा—

गोऽजाविनरनारीणां मूत्रं शुक्रं च शोणितम्।
सृष्ट्यम्बुजं समाख्यातं षण्ढदोषविनाशकम्॥

आयुर्वेदप्रकाशादि ग्रन्थों में आर्त्तवरूप अर्थ स्वीकृत किया है, परन्तु रसेन्द्रचूड़ामणि रसरत्नाकर, रसप्रकाशसुधाकर, रसपद्धति आदि ग्रन्थों में सैन्धव जल रूप ही स्वीकृत किया है। यथा—

(१) रसेन्द्रचूड़ामणौ—

जलसैन्धवयुक्तस्य रसस्य दिवसत्रियम्।
स्थितिराप्यायनी कुम्भे याऽसौरोधनमुच्यते॥

(रसेन्द्रचूड़ामणि, अ० ४)

(२) रसरत्नाकरे—

लवणाम्बुजपिष्टेन हण्डिकान्तर्गतं रसम्।

आच्छाद्याथ जलं क्षिप्त्वा शरावेण निरोधयेत् ॥
ऊर्ध्वं लघुपुटो देयः प्राप्तपुंस्त्वो रसो भवेत् ॥

(३) रसप्रकाशसुधाकरे--

अधुना कथयिष्यामि रसरोधनकर्म च ।
सिन्धूद्भवदशपलं जलप्रस्थत्रयं तथा ॥
धारयेद् घटमध्ये च पारदं दोषवर्जितम् ।
पिधानेन यथा सम्यक् मुद्रितं मृत्स्नया खलु ॥
निर्वाते निर्जने देशे धारयेद्दिवसत्रयम् ।
अनेनैव प्रकारेण रोधनं कुरु वैद्यराट् ॥

(रसप्र० सु०, अ० १)

(४) रसपद्धत्याम्—

कूप्यां वा नृफलोदरे रसमथ प्रक्षिप्यसर्वात्मना-
सार्धं सैन्धववारिणा त्रिदिवसं भूमौ मृदा रोधयेत् ।

(५) रसतरङ्गिणी नाम के अर्वाचीन रसग्रन्थ में भी सृष्ट्यम्बुज शब्द से सैन्धव तथा जल ग्रहण किया है । यथा-

जलसैन्धवसूतपूरितां क्षितिगर्ते खलु काचकूपिकाम् ।
विनिधाय दिनत्रयं ततो गतषाण्ढ्यःसबलोरसो भवेत् ॥

(रसतरङ्गिणी, तरङ्ग ५, श्लोक ८४)

यदि इन ग्रन्थों के अनुसार सृष्ट्यम्बुजशब्द से आर्त्तव के स्थान में सैन्धवनमक तथा जल लेना हो, तो रसप्रकाश-सुधाकर में बताये गये परिमाण के अनुसार १० पल (१४० तोला) सैन्धवनमक को ३ प्रस्थ (१६२ तोला) जल में घोलकर, पारद भरी हुई शीशी अथवा नारियल के बर्तन में डालना चाहिये ।

(द्वितीयोविधिः)

मतांतरं सुगमं च—

कदर्थनेनैव नपुंसकत्वमेवं भवेदस्य रसस्य पश्चात् ।
वीर्यप्रकर्षाय तु* भूर्जपत्रे स्वेद्यो जले सैन्धवचूर्णगर्भे॥९०॥

प्र०—मतान्तरेण सुगमं बोधनस्य द्वितीयविधिमाह-कदर्थनेनेति—एवं कदर्थनेन, पश्चात् = मर्दनमूर्च्छनपातनानन्तरमस्य रसस्य = पारदस्य नपुंसकत्वं = क्लैव्यमेव भवेत्, अतोवीर्यप्रकर्षाय = बलप्रकर्षाय, भूर्जपत्रे = भूर्जपत्रसहिते चतुर्गुणे वस्त्रे पोट्टली रूपेण बद्धोऽसौपारदः, सैन्धवचूर्णगर्भे = सैन्धवचूर्णं (दशपलमितं) गर्भे यस्यतस्मिञ्जले (प्रस्थत्रयमिते) स्वेद्यः—दोलायन्त्रे स्वेद्यः । अत्रोपजातिवृत्तम् ॥ ९० ॥

ज्ञातव्यम्—अयं विधी रसेन्द्रचिन्तामणितः (अ० ३-३६) उद्धृतो माधवेन, रसतरङ्गिण्याः (तर० ५, श्लो० ८२-८३) बोधनस्य प्रथमः प्रकारोऽस्यैव विधेरनुवादरूपोऽस्ति ।

बोधनसंस्कार की दूसरी विधि ।

उ०-इस प्रकार मर्दन, मूर्च्छन तथा पातन संस्कारों से संस्कृत पारद, अवश्य ही नपुंसकता को प्राप्त होजाता है, इस लिये नपुंसकता को दूर कर, बल बढ़ाने के लिये पारद को भोजपत्र में रख, चौलड़ कपड़े की पोटली में बाँधकर, दोलायन्त्र में १० पल (४० तोला) सैन्धवनमक से युक्त ३ प्रस्थ (१९२ तोला) जल में स्वेदन करे ॥ ९० ॥

* च इति पाठान्तरं रसेन्द्रचिन्तामणौ ।

ज्ञातव्य--माधव ने यह विधि, रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० ३, श्लोक ३६) से उद्धृत की है। रसतरङ्गिणी, (तरङ्ग ५, श्लोक ८२-८३) में वर्णित बोधन का प्रथम प्रकार, इसी विधि का अनुवादमात्र है, इस विधि द्वारा दोलायन्त्र में स्वेदन करने का विधान अन्यत्र भी मिलता है। यथा--

कदर्थनेनैव नपुंसकत्वं प्रादुर्भवेदस्य रसस्य पश्चात्।
बलप्रकर्षाय च दोलिकायां स्वेदो जले सैन्धवचूर्णगर्भे ॥

(तृतीयोविधिः)

मतान्तरम्—

१ लवणेनाम्लपिष्टेन हण्डिकान्तर्गतं रसम्।
२ आच्छाद्याथ जलं क्षिप्त्वा ३ शरावेण निरोधयेत् ॥९१॥
ऊर्ध्वं लघुपुटोदेयः ४ प्राप्तपुंस्त्वो रसो ५ भवेत् ॥ ९२ ॥

---

१ 'लवणाम्बुजपिष्टेन' इतिरसकामधेनौ, 'लवणेनाम्बुपिष्टेन' इति च पाठान्तरं रसपद्धतिटीकायामुद्धृते पाठे।

२ 'आच्छाद्याम्लजलं किञ्चित्' इतिपाठान्तरं रसेन्द्रचिन्तामणौ।

३ 'श्रावेणरोधयेत' इतिपाठान्तरं रसेन्द्रचूडामणौ मुम्बयां मुद्रि[त]ा युर्वेदप्रकाशे च।

४ 'लब्धाश्वासं' इतिरसेन्द्रचिन्तामणौ 'लब्धाप्यायः' इति च रसपद्धतिटीकाया मुद्धृतश्लोके पाठान्तरम्।

५ 'भवेद्रसः' इति पाठान्तरं रसकामधेनौ रसपद्धतिटीकायामुद्धृते च श्लोके।

मतान्तरेण बोधनस्य तृतीयविधिमाह—लवणेनेति—हण्डिकान्तर्गतं, एकस्यां हण्डिकायां स्थितं रसं = पारदं, अम्लपिष्टेन = निम्बुरसाद्यम्लेन पिष्टेन लवणेन = सैन्धवेन, अच्छाद्य किञ्चज्जलं क्षिप्त्वा शरावेण = पिधानेन हण्डिकाया मुखं सन्धिलेपेन निरोधयेत्, रुद्ध्वा च तत ऊर्ध्वं लघुपुटः = लावकपुटः कपोतपुटो वा देयः, अनेन रसः पारदः प्राप्तपुंस्त्वः नपुंसकत्वनिरासेन लब्धपौरुषो भवेत्। अत्रानुष्टप्छन्दः ॥ ६१-६२ ॥

ज्ञातव्यम्—एषविधी रसरत्नाकरादुद्धृतो माधवेन रसेन्द्र चिन्तामणौ तृतीयाध्याये (श्लो० ३५) ऽप्यस्ति। रसतरङ्गिण्यां (तरङ्ग ५, श्लो० ८५–८६) निर्दिष्टो बोधनस्य तृतीयः प्रकारोऽस्यवानुवादरूपोऽस्ति।

बोधनसंस्कार की तीसरी विधि

उ०—एक हांडी में पारद को रखकर, ऊपर से नीबू के रस में पिसे हुये सैन्धवनमक से ढक, कुछ जल डाल कर उस हांडी के मुख को ढक्कन से सन्धिलेप द्वारा बन्द करदे, फिर ऊपर से लावकपुट अथवा कपोतपुट आदि लघुपुट देना चाहिये, इस संस्कार द्वारा नपुंसकता दूर होने से, पारद शक्तिशाली होजाता है ॥ ६१-६२ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह विधि, रसरत्नाकर से, उद्धृत की है, रसेन्द्रचिन्तामणि के तृतीय अध्याय (श्लोक ३५) में भी यह विधि है। रसतरङ्गिणी (तरङ्ग ५, श्लोक ८५-८६) में वर्णित बोधनसंस्कार का तृतीय प्रकार इसी विधि का अनुवादमात्र है।

(चतुर्थो विधिः)

मतान्तरम्—

एवं कदर्थितः सूतः १षण्ढभावं प्रयाति हि।
बह्वौषधिकषायेण स्वेदितः २सबलो भवेत् ॥ ९३ ॥

यथा—

सर्पाक्षी चिञ्चिकावन्ध्या भृङ्गाब्दैः स्वेदितो बली।
३निरस्तषण्ढभावोऽसौ जायते हि रसोत्तमः ॥९४॥

सर्पाक्षी नागिनी, चिञ्चा अम्लिका, वन्ध्या बांझखखसा, भृङ्गो भृङ्गराजः अब्दो मुस्ता नागरसञ्ज्ञको ग्राह्यः। एषां रसो ग्राह्यः।

प्र०—मतान्तरेण चतुर्थविधिमाह—एवमिति, एवं–मर्दनादिभिः कदर्थितः सूतः = पारदः षण्ढभावं = नपुंसकत्वं प्रयाति, तदनन्तरं निम्नलिखितानेकौषधानां रसेन दोलायन्त्रे स्वेदितो बलवान् भवति। सर्पाक्षी नागिनी, चिञ्चका–अम्लिका, वन्ध्या–वन्ध्याकर्कोटकी 'बांझककोड़ा' नाम्ना प्रसिद्धा, भृङ्गः = भृङ्गराजः, अब्दः = नागरमुस्तकः, एतेषामौषधीनां रसै र्दोलायन्त्रे स्वेदितोऽसौपारदो निरस्तषण्ढभावः = विगतक्लैब्योऽतएव बली = बलवान् रसोत्तमश्च जायते। अत्रानुष्टप्छन्दः ॥ ९३-९४ ॥

ज्ञातव्यम्—एषविधि र्भावप्रकाशादुद्धृतो माधवेन।

---

१ 'षण्ढो भवति निश्चितम्' इति पाठान्तरं भावप्रकाशे।
२ 'सबली भवेत्' ,, ,,
३ 'ततः सपावकद्रावैः स्विन्नःस्यादतिदीप्तिमान्' ,, ,,

बोधनसंस्कार की चतुर्थ विधि ।

उ०—इस प्रकार मर्दन, मूर्च्छन तथा पातन संस्कारों से संस्कृत पारद, निस्सन्देह नपुंसक होजाता है, फिर वह नीचे लिखी हुई औषधियों के रस से दोलायन्त्र में स्वेदन करने से बलवान होजाता है, नागफनी, इमली, बाँझककोड़ा (बाँझखेखसा), भाँगरा और नागरमोथा के रस से दोलायन्त्र में स्वेदन करने से यह पारद, नपुंसकता को छोड़कर, बलवान तथा अत्युत्तम पारद बन जाता है ॥ ६३-६४ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह विधि, भावप्रकाश से उद्धृत की है।

७ अथ नियमनम् (प्रथमोविधिः)

सर्पाक्षीचिञ्चिकावन्ध्या भृङ्गाब्दकनकाम्बुभिः ।
दिनं संस्वेदितः सूतो नियमात् स्थिरतां व्रजेत् ॥९५॥

प्र०—नियमनस्य प्रथमविधिमाह—सर्पाक्षीति सर्पाक्षी = नागिनी, कनकः = कृष्णधत्तूरः सर्पाक्ष्यादीनां = नागिन्यादीना मम्बुभिः = स्वरसैः, चतुर्थावशिष्टैः कषायैर्वा दिनम् = अहोरात्रं संस्वेदितः सूतः = पारदो नियमात् = नियमनसंस्कारात् स्थिरतां = चपलत्वनिरासेन स्थैर्यं, वह्निसहत्वं व्रजेत् = प्राप्नुयात् । चुल्लिकाग्नौ स्थापितो नोड्डीयत इत्यर्थः, तदाऽसौ मूर्तिबद्ध उच्यते । अत्रानुष्टप्छन्दः ॥ ९५ ॥

ज्ञातव्यम्—एषविधी रसेन्द्र चिन्तामणित (अ० ३, श्लोक ३७) उद्धृतो माधवेन । रसतरङ्गिण्यां (तरङ्ग ५, श्लो० ८८) निर्दिष्टो नियमनस्य प्रथमः प्रकारोऽस्यैवानुवादरूपोऽस्ति ।

७ नियमन संस्कार ।

प्रथम विधि ।

उ०—नागफनी, इमली, बाँझककोड़ा, भांगरा, धतूरा और नागरमोथा के स्वरस अथवा क्वाथ (काढ़े) से एक दिन पारद का स्वेदन करे। इस नियमन संस्कार द्वारा चञ्चलता नष्ट होने से पारद, अग्नि को सहने वाला (अग्नि स्थायी) हो जाता है ॥६५॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह विधि, रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० ३ श्लोक ७) से उद्धृत की है। रसतरङ्गिणी (तरङ्ग ५ श्लोक ८८) में वर्णित नियमन संस्कार का प्रथम प्रकार, इसी विधि का अनुवाद मात्र है।

नियमन संस्कार का लक्षण और प्रयोजन ।

रोधन (बोधन) संस्कार द्वारा बलवान हुये पारद की चञ्चलता को दूर करने के लिये, पारद का स्वेदन करते हैं, यह नियमन संस्कार कहलाता है। इसका प्रयोजन पारद की चञ्चलता को दूर करना है, जिससे वह अग्नि स्थायी हो जाता है। यथा—

(१) रसेन्द्रचूड़ामणौ—रोधनाल्लब्धवीर्यस्य चपलत्वनिवृत्तये।
क्रियते पारदे स्वेदः प्रोक्तं नियमनं हि तत्॥
(रसेन्द्रचूड़ामणि, अ० ४, रसरत्नसमुच्चय अ० ८)

(२) रसप्रकाशसुधाकरे—
अतः परं प्रवक्ष्यामि नियमं पारदस्य च।
यत्कृते चपलत्वं हि रसराजस्य शाम्यति॥
(रसप्रकाशसुधाकर, अ० १)

(३)-रसार्णवे न नियामतो न प्रयाति तथा धूमगतिं प्रिये ।
कणिका जाल रहितो बुद्बुदैश्चापि वर्जितः ॥
नियमितो भवत्येव चुल्लिकाग्निसहस्तथा ॥

इस प्रकार नियमन संस्कार करने से अग्नि पर रखा हुआ पारद उड़ता नहीं है फिर सोमवल्ली आदि दिव्यौषधियों के रस में घोटने से यह पारद की 'मूर्तिबद्धत्व' अवस्था होती है, तब यह मूर्ति बद्ध पारद कहलाता है जैसा कि आगे माधव ने स्वयं आयुर्वेदप्रकाश के इसी प्रथम अध्याय के १४१ वें सूत्र में लिखा है—

बन्धनंतु स्वाभाविकद्रवत्वे सतिवह्निनाऽनुड्डीयमानत्वंमूर्ति-बद्धत्वम् ।

तत्तु नियमनान्तैः संस्कारैर्भवति ॥ १४३ ॥

(द्वितीयोविधिः)

उत्तराशाभव१ स्थूलरक्तसैन्धवलोष्टकः ।
तद्गर्भेरन्ध्रकं कृत्वा सूतं तत्र विनिक्षिपेत् ॥९६॥
ततस्तु चणकक्षारं दत्वा चोपरिनिम्बुजम्२ ।
रसं प्रक्षिप्य दातव्यं तादृक्सैन्धव खण्डकम् ॥९७॥
गर्तंकृत्वा धरागर्भे दत्वा सैन्धवसम्पुटम्३ ।
धूलिमष्टांगुलां दत्वा कारीषं४ दिनसप्तकम् ॥९८॥

---

१ उत्तराशाभवः स्थूलः, २ नैम्बुकम्, ३ संयुतम्, ४ कारीषीं इति पाठांतरं बृहद्रसराजसुन्दरोद्धृतेपाठे ।

वह्निं प्रज्वाल्यतद्ग्राह्यं क्षालयेत्काञ्जिकेन च ।
अयंनियमनो नामसंस्कारो गदितो बुधैः ॥९९॥
अभावे चणकक्षारस्यार्पयेन्नवसागरम् ।
स्वर्जिका वा प्रदातव्या नूनमित्याह भास्करः ॥१००॥

प्र०—भास्करमतेन नियमनस्यद्वितीयविधिमाह उत्तरेति उत्तराशाभवः = उत्तरदिगुत्पन्नः, स्थूलरक्तसैन्धवलोष्टकः - स्थूलरक्तवर्णसैन्धवपाषाणोऽस्ति, तद्गर्भे तत्स्थूलरक्तवर्णं सैन्धवपाषाणमध्ये रंध्रकं = छिद्रं, कृत्वातत्र = तस्मिन् रन्ध्रे सूतं पारदंविनिक्षिपेत्, ततः = तदनन्तरं चणकक्षारं दत्वा तदुपरिनिम्बुजंरसम् = निम्बुस्वरसं प्रक्षिप्य तादृक् स्थूलरक्तवर्णं सैन्धवखण्डकं निधाय धरागर्भे पृथिव्यां गर्तं कृत्वा सैन्धवसम्पुटंदत्वा तदुपर्यष्टाङ्गुलं कारीषं वनोत्पलभस्म दत्वादिनसप्तकम् = सप्तदिवसपर्यन्तं वह्निं प्रज्वालयेत् स्वाङ्गशीतलं च पारदंगृहीत्वा काञ्जिकेन क्षालयेत् शोधयेत्, बुधैः = रसाचार्यैरयंनियमनो नामसंस्कारोगदितः कथितः, चणकक्षारस्याभावे नवसागरं = नवसादर मर्पयेत्, स्वर्जिका = सर्जिक्षारो वा प्रदातव्य इतिभास्कराचार्यआह । अत्रानुष्टुप् छन्दः ॥ ९६–१०० ॥

भास्कर के मत से नियमन संस्कार की दूसरी विधि ।

उ०—उत्तर दिशा में लाल रंग का स्थूल सैन्धव पत्थर होता है, उस में छिद्र कर पारद डाल भरदे, और उसके ऊपर चना का खार (चनाक्षार) भर कर नीबू का रस भरदे और ऊपर से उसी प्रकार सैन्धव का टुकड़ा रख कर सम्पुट से मुख बन्द कर, पृथिवी में गड्ढा खोद कर रखदे और ऊपर से

आठ अङ्गुल ऊँची आरने (जंगली) कंडों की राख से दाब कर सात दिन तक अग्नि जलावे, और अपने आप शीतल हुये पारद को निकाल कर काँजी से धो डाले, रस शास्त्रों के आचार्यों ने इस को नियमन संस्कार कहा है, यदि इस संस्कार में चना का खार न मिले तो उसके अभाव में नौसादर अथवा सज्जीखार डालना चाहिये, ऐसा भास्कराचार्य ने कहा है।

८ अथसंदीपनम् (प्रथमोविधिः)

कासीसं राजिका पञ्चलवणं मरिचानि च ।
१द्विशिग्रुबीजमेकत्रटङ्कणेन समन्वितम् ॥१०१॥
आलोड्यकांजिके दोलायन्त्रेपाच्यो२ दिनैस्त्रिभिः ।
दीपनं जायते सम्यक् सूतराजस्य जारणे ॥१०२॥

प्र०—संदीपनमाह कासीसमिति कासीसादिकं सर्वंपारदात्षोडशांशंगृहीत्वा कल्कंकृत्वा षोडशगुणेकाञ्जिके हण्डिकायामेकस्यामालोड्य दोलायन्त्रे स्वेदनविधिना पारदस्त्रिभिर्दिनैः दिवसत्रयंपाच्यः = स्वेद्यः, अनेनप्रकारेण सूतराजस्य = पारदस्य जारणे पटुतासम्पादकं दीपनं दीपनाख्यः संस्कारोजायते । अत्रानुष्टप् छन्द ॥१०१-१०२॥

---

१ 'भू' इति पाठान्तरं रसकामधेनावुद्धृतेपाठे ।

२ गाकात् इति पाठांतरं रसेन्द्रचिंतामणि रसकामधेनावुद्धृत पाठे च ।

ज्ञातव्यम्—एषविधो रसेन्द्रचिन्तामणित (अ० ३ श्लो० ३८।३९) उद्धृतो माधवेन । रसतरङ्गिण्यां (तरङ्ग ५ श्लो० १६) वर्णितोदीपनस्य प्रथमः प्रकारोऽस्यैव विधेरनुवाद रूपोऽस्ति।

८ संदीपन (दीपन) संस्कार ।

उ०—पारद का आठवां संस्कार दीपन, सन्दीपन अथवा प्रदीपन कहलाता है, इसकी विधि निम्नलिखित है—

कासीस, राई, सैन्धव, सामुद्र, विड, सौवर्चल (सोंचर) तथा साँभर नमक, काली मिरच, दोनों प्रकार का सँहजना और सुहागा इन सब को पारद का सोलहवां ($\frac{1}{16}$) भाग लेकर कल्क बना एक हांडी में सोलह गुनी काँजी में मिलाकर दोला यन्त्र द्वारा स्वेदन विधि से तीन दिन तक स्वेदन करे, इस प्रकार जारण की सामर्थ्य बढ़ाने वाला पारद का यही दीपन संस्कार होता है ॥ १०२ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने दीपन संस्कार की यह विधि रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० ३ श्लोक ३८–३९) से उद्धृत की है।

रसतरङ्गिणी (तरंग ५, श्लोक १६) में वर्णित दीपन संस्कार का प्रथम प्रकार इसी विधि का अनुवाद मात्र है।

दीपन का लक्षण तथा प्रयोजन ।

धातु, तथा क्षार आदि के सहित हांडी में भरी हुई कांजी में दोलायन्त्र से तीन दिन तक स्वेदन करने से पारद का दीपन संस्कार हो जाता है, इस संस्कार से पारद की जारण की सामर्थ्य की शक्ति की वृद्धि, तीव्रता, वेग पूर्वक

कार्य करना, व्यापकता, भूख तथा शक्ति बढ़ जाती है और यह अभ्रक सत्व आदि को ग्रसने में भली भाँति समर्थ हो जाता है। यथा—

(१) धातुपाषाणमूलाद्यैः संयुक्तो घटमध्यगः।

ग्रासार्थं त्रिदिनं स्वेद्यो दीपनं तन्मतं बुधैः॥ (रसेन्द्रचूडामणि, अ० ४, रसरत्नसमुच्चय अ० ८)॥

(२) स्वेदनाद्दीपितो देवि ? ग्रासार्थी जायते रसः।

(रसार्णव)

(३) अनेनैवप्रकारेण दीपनं जायते ध्रुवम्।
तीव्रत्वम् वेगकारित्वं व्यापकत्वम् बुभुक्षता॥
बलवत्वं विशेषेण कृते सम्यक् प्रजायते।
मुखोत्पादनकं कर्म प्रकारो दीपनस्यहि॥

(रसप्रकाशसुधाकर अ० १, पारदसंहिता)

'दीपन' संस्कार को मुखकरण भी कहते हैं, क्योंकि यह परस्पर पर्यायवाचक हैं जैसा कि माधव ने स्वयं आगे चल कर लिखा है—

वस्तुतस्तु दीपनस्यैवापरपर्यायो मुखकरण मिति न पृथक्संस्कारः, तत्साधकान्यूनविंशतिकर्माणीति नियमभङ्गात्।

(आयुर्वेदप्रकाश अ० १।१८३)

स्वेदन, नियमन तथा दीपन, इन तीनों संस्कारों में दोलायन्त्र में स्वेदन होता है, औषधियों के भेद से ही इन में परस्पर भेद जानना चाहिये।

(द्वितीयोविधिः)

अथवाचित्रक द्रावैः काञ्जिके त्रिदिनंपचेत् ।
दीपनं जायतेतस्य रसराजस्य चोत्तमम् ॥१०३॥

प्र०—दीपनस्य द्वितीयविधिमाह—अथवेति अथवा पारदं चित्रकद्रावैः=चित्रकक्वाथैः काञ्जिके दोलायन्त्रेस्थो त्रिदिनं पचेत्=स्वेदयेत, अनेन प्रकारेण रसराजस्य=पारदस्यौत्तमम् दीपनंजायते । अत्रानुष्टुप् छन्दः ॥ १०३ ॥

ज्ञातव्यम्—एषोऽपिविधी रसेन्द्रचिन्तामणितः (अ० ३ श्लो० ४०.) उद्धृतो माधवेन । रसतरङ्गिण्यां (तरङ्ग ५ श्लो०६६) वर्णितोदीपनस्यचतुर्थः प्रकारोऽस्यैवानुवादरूपोऽस्ति ।

दीपन संस्कार की दूसरी विधि ।

उ०—अथवा पारद को चित्रक के क्वाथ से काँजी में दोलायन्त्र से तीन दिन तक स्वेदन करे, इस प्रकार से पारद का उत्तम दीपन संस्कार हो जाता है ॥ १०३ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह विधि भी रसेन्द्रचिन्तामणि से उद्धृत की है ।

इस तरङ्गिणी (तरङ्ग ५ श्लोक ६६) में वर्णित दीपन संस्कार का चतुर्थ प्रकार इसी विधि का अनुवाद मात्र है ।

९—अथानुवासनम् ।

(प्रथमोविधिः)

दीपनं रसराजं तु जम्बीररससंयुतम् ।

दिनैकं धारयेद्घर्मे मृत्पात्रे वाशिलोद्भवे ॥१०४॥

इत्यनुवासनम् ।

प्र०—अनुवासनस्य प्रथमविधिमाह—दीपितमिति—दीपितं =दीपनसंस्कारेण संस्कृतं रसराजं =पारदंतुजम्बीररससंयुतं कृत्वा मृत्पात्रे शिलोद्भवे पात्रेवादिनैकम् =एक दिवसं घर्मेधारयेत् । इत्थंहि पारदस्यानुवासनं जायते ॥ अत्रानुष्टुप् छन्दः॥१०४॥

ज्ञातव्यम्—एषविधी रसेन्द्रचिन्तामणितः (अ० ३, श्लो० ४१) उद्धृतो माधवेन ।

अनुवासनम् ।

अनुवासनसंस्कार की प्रथम विधि ।

उ०—दीपनसंस्कार से संस्कृत पारद को जंभीरी के रस में डालकर मिट्टी अथवा पत्थर के बर्तन में भर कर एक दिन धूप में रखदे, इस प्रकार से पारद का अनुवासनसंस्कार होता है ॥ १०४ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह विधि रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० ३, श्लोक ४१) से उद्धृत की है ।

(द्वितीयो विधिः)

सहस्रनिम्बूफलतोय घृष्टो रसो भवेद्वह्विसमप्रभावः ।
सव्योषराजीलवणः सचित्रः सरामठो त्रिंशतिवासराणि १०५

इति रसचिन्तामणावनुवासनम् ।

द्वितीय विधिमाह—सहस्रेति-व्योसः =त्रिकटुः, राजी= आसुरी, लवणं =सैन्धवं चित्रः चित्रकः,रामठः =हिगु एभिः सहितो

सहस्रनिम्बुफलतोये = सहस्रनिम्बुस्वरसे विशतिवासराणि = बिंशतिदिवसपर्यन्तं घृष्टः = मर्दितः पारदोवह्निसमप्रभावो भवेत् । अत्रोपजाति वृत्तम् ॥ १०५ ॥

ज्ञातव्यम् एषविधी रसचिन्तामणित उद्धृतो माधवेन। अस्यानुवासनस्य रोधने (बोधने) ऽन्तर्भावात् रसरत्नसमुच्चयादिषु न पृथक्त्वेन वर्णन मुपलभ्यते ।

अनुवासनसंस्कार की दूसरी विधि ।

उ०—सोंठ, मरिच, पीपल, राई, सैन्धवनमक, चित्रक और हींग सहित एक हज़ार नीबुओं के रस में पारद को बीस दिन घोटे, तो वह अग्नि के समान प्रभावशाली होजाताहै १०५

ज्ञातव्य--माधव ने यह विधि रसचिन्तामणि से उद्धृत की है ।

यह अनुवासनसंस्कार रोधन (बोधन) का ही भेद है, इसलिये उसी के अन्तर्गत होजाने के कारण रसरत्नसमुच्चय रसप्रकाशसुधाकर आदि रसशास्त्रों में इसका पृथक् २ नाम लिखकर वर्णन नहीं किया गया है । यथा--

१—अनुवासनस्यापि रोधन एवान्तर्भावः ।

(रसकामधेनु, पृष्ठ ३२४)

२--अनुवासनमपि रोधभेद एव ।

(रसकामधेनु, पृष्ठ ३४५)

अनुवासनसंस्कार का लक्षण ।

दीपनसंस्कार से संस्कृत पारद को मिट्टी अथवा पत्थर के बर्तन में अत्यन्त उष्ण तथा तीक्ष्ण खट्टे जंभीरी आदि के

रस में डालकर, एक दिन तक धूप में रखने को अनुवासन संस्कार कहते हैं। यह पारद की चञ्चलता आदि दोषों का नाशक है। यथा--

अत्युष्णतीक्ष्णाम्लद्रवे चिरस्थं घर्मतापितम् ।
चाञ्चल्यादिक दोषघ्नं तद्भवेदनुवासनम् ॥

(रसकामधेनु पृष्ठ १४५)

(शुद्धसूतलक्षणम्)

एतैरनुवासनान्तैर्नवभिः संस्कारैः शुद्धः सूतोऽष्टमांशोऽवशिष्यत-इत्याह रसरत्नाकरकृन्नित्यनाथः—

स्वेदनादिनवकर्मसंस्कृतः सप्तकञ्चुकविवर्जितो भवेत् ।
अष्टमांश इहशिष्यते तदा शुद्धसूत इति कथ्यते बुधैः ॥

इति ॥ १०६ ॥

प्र०—शुद्ध सूतलक्षणमाह—एतैः =स्वेदनाद्यैरनुवासनान्तैर्नवभिः संस्कारैः शुद्धः सूतः =पारदोऽष्टमांशः = अष्टम ($\frac{1}{8}$) भागमितो ऽवशिष्यते, यथा च रसरत्नाकरकृत् =रसरत्नाकरकर्त्तानित्यनाथ, आह—स्वेदनेति-स्वेदनादिनवकर्म संस्कृतः =स्वेदनाद्यनुवासनान्तनवसंस्कार कर्म संस्कृतः पारदः सप्तकञ्चुकविवर्जितः =पर्पटी पाटिनी प्रभृति सप्तकञ्चुकरहितो भवेत् स पारदो यदा, संस्कारैः सप्तकञ्चुकरूप सप्तभागानिर्हरणात्, अष्टमांशः = अष्टमः ($\frac{1}{8}$) भागमितः शिष्यतेः अवशिष्यते तदा बुधैः =रसशास्त्राचार्यैः सः शुद्धसूतः =शुद्ध पारद इति कथ्यते ॥ अत्रेन्द्रवज्रानाम वृत्तम् ॥ १०६ ॥

ज्ञातव्य—श्लोकोऽयं रसरत्नाकरादुद्धृतो माधवेन।
शुद्धसूत लक्षण मग्रेऽप्युक्तमायुर्वेद प्रकाशे यथा—

सर्वदोषविनिर्मुक्तः सप्तकञ्चुक वर्जितः।
जायते शुद्धसूतोऽयं योजयेद्रसकर्मणि॥

(अ० १ श्लोक० १०६)

शुद्ध पारद का लक्षण।

उ०—स्वेदन आदि अनुवासन पर्यन्त इन नौ संस्कारों से संस्कृत हुआ पारद पर्पटीपाटिनी आदि सात कञ्चुक दोषों से रहित होजाता है और जब वह पारद, संस्कारों द्वारा शोधन करने से सात कञ्चुकरूप सात भागों के नष्ट होजाने के कारण आठवाँ भाग शेष रह जाता है, तब रसशास्त्र के आचार्यों द्वारा वह शुद्ध पारद कहलाता है॥ १०६॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक रसरत्नाकर से उद्धृत किया है। रसपद्धति में भी संस्कृत पारद के अष्टांश शेष रहने का उल्लेख मिलता है। यथा—

संस्कारैरिति संस्कृतोऽष्टभिरसौ निष्कंचुको निर्मलः।
सूतः सर्वरसेष्व कुण्ठमहिमा स्यदष्टमांशोषित॥१४॥

माधव ने शुद्ध पारदका लक्षण आगे भी आयुर्वेदप्रकाश के इसी प्रथम अध्याय के १४६ वें श्लोक में लिखा है। यथा-

सर्वदोषविनिर्मुक्तः सप्तकञ्चुकवर्जितः।
जायते शुद्धसूतोऽयं योजयेद्रसकर्मणि॥

(आयुर्वेदप्रकाश, अ० १, श्लोक १४६)

यद्यपि माधव ने आयुर्वेदप्रकाश में रसेन्द्रचिन्तामणि कर्ता के मतानुसार स्वेदनादि अनुवासन पर्यन्त नौ संस्कारों का वर्णन कियाहै, परन्तु इनमें से अनुवासनसंस्कार को रोधन (बोधन) का भेद मानने से उसीके अन्तर्गत होजाने से अन्य आचार्यों के मत में चिकित्सोपयोगी यह आठ संस्कार ही माने गये हैं। यथा—

(१) रसरत्नसमुच्चये—

इत्यष्टौसूतसंस्काराः समाद्रव्ये रसायने।
कार्यास्ते प्रथमं शेषानोक्ता द्रव्योपयोगिनः॥

(रसरत्नसमुच्चय, अ० ११)

(२) रसप्रकाशसुधाकरे—

सूतस्याष्ट च संस्काराः कथिता देहकर्मणि।
तथा च दशकर्माणि देहलोह कराणि हि॥

(रसप्रकाशसुधाकर, अ० १)

(३) रसपद्धत्याम्—

स्वेदोमर्दनमूर्च्छनोत्थिति ततः पातोऽपि भेदान्वितो।
रोधः संयमनं प्रदीपनमिति स्पष्टाष्टधा संस्कृति॥

(रसपद्धति, श्लोक ५)

(शुद्धसूतपरीक्षा)

शुद्ध सूतपरीक्षेयमिति भावः। कीदृशः स्वेदनादि नवकर्मभिः संस्कृतः पारदः सप्तकञ्चुक विवर्जितो भवेदत्र दृष्टप्रत्ययमाह—

(कञ्चुकविवर्जितस्येयं परीक्षा)।

यदा अष्टमांशो ऽवशिष्यते, सप्तभागाःसप्तकंचुकसम्बन्धिनोगच्छन्त्यष्टमो भागःपारदस्यशिष्यते तदाशुद्धसूतःकंचु-

कदोषविनिर्मुक्तो भवति । सप्तकंचुकाः सप्तावरणानिशिव-शापाज्जातानि, तद्विमुक्ततया शुद्धसूतो बुधैःकथ्यत इति ।

प्र०—शुद्ध सूतपरीक्षामाह—शुद्धेति—इयम् = उपरिनिर्दिष्टाशुद्धसूतपरीक्षा = शुद्धपारदपरीक्षा अस्ति इति तामेव पुनर्विवृणोति—कीदृश इति-स्वेदनादिनव कर्मणिः संस्कृतः पारदः सप्तकञ्चुकविवर्जितोभवेत् सप्रमाणं कञ्चुकरहितस्य परीक्षाञ्चाह-यदा अष्टमांशोऽवशिष्यते, सप्तभागाः सप्तकञ्चुकसम्बन्धिनः सप्तावरणरूपा गच्छन्त्यष्टमोभागः पारदस्यशिष्यते तदाशुद्धसूतः कञ्चुकदोषरहितो भवति—सप्तकञ्चुकाः सप्तावरणानि शिवशापाज्जातानि । यथा चोक्तम् ।

(१) रसरत्नसमुच्चये—

एवं भूतस्य सूतस्य मर्त्यमृत्युगदच्छिदः ।
तान्दृष्ट्वाऽभ्यर्थितो रुद्रः शक्रेण तदन्तरम् ।
दोषैश्चकञ्चुकाख्यैर्हि रसराज्येनियोजितः ।
(रसरत्नसमुच्चय अ० १)

(२) रसपद्धति टीकायाम्—

एतदन्तरं तौ इन्द्रप्रार्थनयारुद्रेण कञ्चुकादि दोषैश्चाभिशप्तौ कृतौ रसपद्धति टीका ।

शुद्ध पारद की परीक्षा ।

उ०--ऊपर लिखे हुए लक्षण द्वारा यह शुद्ध पारद की परीक्षा है-कि स्वेदन आदि नौ संस्कारों द्वारा पारद सात कंचुक (काँचली) दोषों से रहित होजाता है, कंचुक दोष रहित की सप्रमाण परीक्षा यह है कि स्वेदन आदि अनुसार न

पर्यन्त संस्कारों द्वारा शोधन करने से संस्कृत हुआ पारद आठवां (⅛) भाग शेष रहता है, शोधन द्वारा उस पारद में से आवरण रूप सात कंचुकों के सात भाग नष्ट होजाते हैं, इस प्रकार जब आठवां (⅛) भाग शेष रहता है तब वह कचुक दोषों से रहित शुद्ध पारद कहलाता है, महादेवजी के शाप से पारद पर सात आवरणरूप सात कंचुक उत्पन्न होगये थे, उन कंचुकों से रहित होने पर वह रसशास्त्र आचार्यों द्वारा शुद्ध पारद कहलाया जाता है।

ज्ञातव्य--प्राचीन रसशास्त्र के आचार्यों ने पारद की सात कंचुकों का वर्णन पौराणिक ढंग से आलङ्कारिक भाषा में प्राचीन निम्नलिखित प्रकार से किया है--

(१) रसरत्नसमुच्चये —

एवं भूतस्य सूतस्य मर्त्यमृत्युगदच्छिदः ।
प्रभावान्मानुषा जाता देवतुल्य बलायुषः ॥
तान् दृष्ट्वाऽभ्यर्थितो रुद्रः शक्रेण तदनन्तरम् ।
दोषैश्चकञ्चुकाख्यैर्हि रसराजो नियोजितः ॥

(रसरत्नसमु० अ० १)

(२) रसपद्धति टीकायां-एतदनन्तरं तौ इन्द्रप्रार्थनया रुद्रेण कञ्चुकादि दोषैश्चाभिशप्तौ कृतौ ॥

अथ जारणम् (जारण लक्षणम्)

जारणा हिनाम* गालनपालन व्यतिरेकेणग्रासघन-हेमादि रसस्यपूर्वावस्था प्रतिपन्नत्वम् ॥ १०७ ॥

*—पातनगालनव्यतिरेकेण घनहेमादिग्रासपूर्वक, इति पाठान्तरं रसेन्द्रचूडामणौ ।

प्र०—जारण लक्षणमाह—गालनं च पातनं चेति गालन पातने, तयोर्व्यतिरेकेण–गालन व्यतिरेकेण = वस्त्रादिपातनं विना, पातनव्यतिरेकेण = ऊर्ध्वपातनादि संस्कारं विना–ग्रस्तो घनः–अभ्रकं, हेमः = स्वर्णं, आदिस्वर्ण माक्षिक सत्वादिकं येन रसेन-तस्य = ग्रस्ताभ्रकस्वर्ण स्वर्णमाक्षिकादिपारदस्य पूर्वावस्थाप्रतिपन्नत्वे = स्वरूपप्राप्तिः तुलयातोलनेन स्वप्रमाणातिरेकाभाव इत्यर्थः, अतएवोक्तमभियुक्तैः " अधिक तोलितश्चेत्स्यात्पुनः स्वेद्यः समावधिः, जारणा कथ्यते। अयमाशयः, पारदः स्वर्णपत्राणि चरति परन्तु वस्त्रगालितसः स्वर्णपत्रेभ्यः पृथग्भवति. एवमेव पारदः कज्जल्यां न दृष्टिपथमायाति किन्तूर्ध्व पातनसंस्कारेण पृथग्भूत्वोर्ध्वपात्रे संलग्नोभवति, इत्थमुभयत्रापि पारदस्य पूर्वावस्था प्रतिपन्नत्वं विलोक्यते,परन्तु नैषा जारणा यतोह्निनात्र स्वर्णगन्धकौ जीर्णे–अपितु तौ वस्त्रगालनोर्ध्व पातनाभ्यां पारदात्पृथग्भूतौ दृश्येते, जारणायां तु गालनपातन संस्कारकरणाकरणयोरपिसम्यग्जोर्णाभ्रकस्वर्णादिपारदस्य पूर्वावस्था प्रतिपन्नत्वं दृश्यते, परन्तु न च तत्र स्वर्णगन्धकादीनां पृथग्भावः संलक्ष्यते ॥ १०७।

ज्ञातव्य–यद्यपि संस्कार क्रमो रोधेन गगनादिग्रासप्रमाण संस्कारस्य वर्णन मुचितम्–परन्तु गगनादि ग्रासप्रमाण मारभ्य द्रुत्यन्तसंस्कारा जारणाया एवाङ्ग भूतेत्यङ्गीस्वरूपा जारणैव प्रथमंवर्ण्यते। जारणा लक्षणम् रसेन्द्रचूरामणौ तु द्रुतग्रासपरीणामोविडयन्त्रादियोगतः। जारणेत्युच्यते इति।

जारणा।

उ०—जारणा का लक्षण–जिस पारद ने अभ्रक, सत्व गन्धक स्वर्ण तथा सुवर्णमाक्षिक सत्व आदि का जीर्ण कर

लिया है उसका वस्त्र से छानने और ऊर्ध्वपातन संस्कार करने के बिना ही, अपने पहिले स्वरूप को प्राप्त करना जारणा कहलाता है।

इसका भाव यह है कि यद्यपि पारद, स्वर्णपत्रों (सोने के वर्कों) को जीर्ण कर लेता है और फिर वह वस्त्र (कपड़े) में छानने से स्वर्ण से अलग होजाता है, इसी प्रकार पारद कज्जली में नहीं दीखता है, और वह ऊर्ध्वपातन संस्कार करने पर गन्धक से अलग होकर ऊपर की हांडी में जा लगता है, इस प्रकार पारद अपने पहिले स्वरूप को अवश्य प्राप्त कर लेता है. परन्तु यह जारणा नहीं है, क्योंकि यहाँ पर स्वर्ण और गन्धक जीर्ण नहीं होते, किन्तु वस्त्र में छानने तथा ऊर्ध्वपातन करने से अलग होजाते हैं, और जारणा में अभ्रक सत्व गन्धक तथा स्वर्ण आदि को भली भांति जीर्ण किये हुए पारद को वस्त्र में छानने और ऊर्ध्वपातन करने या न करने पर भी पहिला स्वरूप तो प्राप्त होना तो दीखता है परन्तु स्वर्ण और गन्धक को अलग होते हुये नहीं दीखते हैं।

ज्ञातव्य--माधव ने जारणा का यह लक्षण रसेन्द्रचिंतामणि (अ० ३।४२) से उद्धृत किया है। यद्यपि संस्कारों के क्रम के अनुरोध से अब गगनादिग्रास प्रमाण का वर्णन करना उचित है, परन्तु गगनादि ग्रास प्रमाण से द्रुतिपर्यन्त संस्कारों के जारणा के अङ्ग होनेके कारण,अङ्गीस्वरूप जारणाका वर्णन ही पहिले किया जाता है। प्राचीन रसशास्त्रों में जारणा के प्रकरण का स्पष्ट रूप से विस्तार पूर्वक वर्णन मिलता है। यथा-

द्रुतग्रास परीणामो बिडयन्त्रादि योगतः ।
जारणेत्युच्यते तस्याः प्रकाराः सन्तिकोटिशः ॥

ग्रासस्य चारणं गर्भद्रावणं जारणं तथा।
इति त्रिरुपा निर्दिष्टा जारणा वरवार्तिकैः॥
(रसेन्द्र चूड़ामणि, अ० ४ रसरत्नसमुच्चय अ० ८)

जारणा के भेद।

उ०—अभ्रकसत्व तथा गन्धक आदि के जारण क्रम के अनुसार यह जारणा, (१) बालजारणा तथा (२) वृद्ध(वद्ध) जारणा भेद से दो प्रकार की होती है। यथा—

जारणा द्विविधा बाल जारणा वृद्ध जारणा। (रसार्णव)

(१) बाल जारणा—इसमें पारद में क्रमपूर्वक अभ्रकसत्व, गन्धक माक्षिकसत्व हरिताल सत्व भूनागमसत्व तथा स्वर्ण जारणा आदि किया जाता है। यथा—

गगनं जारयेदादौ सर्वसत्वमतःपरम्।
ततो माक्षिक सत्वं च सुवर्ण तदनन्तरम्॥ (रसार्णव)

२-अभ्रक जारण मादौगर्भद्रुतिजारणं च हेम्नोऽन्ते।
(रसहृदय)

(२) वृद्ध जारणा—इसमें सर्व प्रथम गन्धक का जारण कर फिर स्वर्ण, अभ्रकसत्व, स्वर्णमाक्षिक, हरितालसत्व, भूनागसत्व तथा हीरा आदि रत्नों का जारण किया जाता है। यथा रसचिन्तामणौ—

१-गन्धकं जारयेत्पूर्वंयन्त्रे कच्छपसंज्ञके।
पश्चाच्च जारयेद्धेम व्योमप्रभृति यद्भवेत्।
पश्चात्सत्वादिकाः सर्वे जायन्ते रत्नसञ्चयाः॥
क्रमोऽयं विद्यते सर्वजारणासु न संशयः॥

इत्युक्तं तत्तु वृद्धजारणापरम्, अतएव देवेन्द्रगिरिणा हेमवज्रबीजानामादौ गन्धकजारणमुक्तम्। (रसकामधेनु ३५६पृष्ठ)

२-गन्धक जारणमादौ कुर्यादथ जारणं सुवर्णस्य ।
जलधर सत्वस्य ततो जारणमथ सर्वलोहानोम् ।
(आयुर्वेदप्रकाश अ० १ श्लोक २२५)

इन दोनों जारणाओं में से बाल जारणा अधम तथा वृद्ध जारणा उत्तम मानी जाती है। यथा—

या रसे वर्णिता पूर्वमधमा बाल जारणा ।
उत्तमा दुर्लभा चैवश्रूयतां वृद्ध जारणा ॥ (रसार्णव)

भूचरी तथा खेचरी जारणा ।

रसार्णव में जारणा की भूचरी तथा खेचरी दो संज्ञायें (नाम) और बताई हैं।

भूचरी—अभ्रकसत्व स्वर्ण तथा चाँदी आदि की जारणा को भूचरी जारणा कहते हैं।

खेचरी—हीरा आदि रत्नों की जारणा को खेचरी जारणा कहते हैं। यथा—

(१) मुक्ताभ्रकस्वर्णतारवीजौषधि जारणा भूचरी संज्ञका ।
तामुक्त्वा खेचरी संज्ञकां रंजनरूपां रत्नजारणामाह ॥
(रसकामधेनु ४३१ पृष्ठ)

(२) भूचरी जारणाप्रोक्ता खेचरीं जारणां शृणु । (रसार्णव)

जारणा के समुखा तथा निर्मुखा प्रकार ।

जारणा के समुखा तथा निर्मुखा दो प्रकार और बताये गये हैं।

१—समुखा- इसमें दीपनादि संस्कार से पारद का मुख करण होने से स्वर्ण आदि बीज भक्षण की सामर्थ्य होती है।

२—निर्मुखा इसमें पारद का मुखकरण नहीं होता।

इस निर्मुखा में गन्धक जारण से मुख करण कर स्वर्ण आदि बीज जारण करने चाहिये। यथा—

(१) समुखा निर्मुखा चेति जारणा द्विविधा पुनः।

(रसकामधेनु ३५४ पृष्ठ)

(२) जारणा द्विविधा—समुखा निर्मुखा च तत्र समुखा दीपनादि संस्कारेण बीजभक्षणसामर्थ्यं निर्मुखत्वमसंजात-मुखत्वम्। निर्मुखेगन्धक जारणाया मुखं सम्पाद्य बीजादि जारणादि संस्काराः कार्याः।

(रसपद्धति टीका पृष्ठ ४४)

आयुर्वेदप्रकाश का जारणाक्रम।

आयुर्वेदप्रकाश में उत्तम वृद्ध जारणा का क्रम स्वीकार कर सर्व प्रथम गन्धक जारणा का वर्णन कर फिर स्वर्ण तथा अभ्रक सत्व आदि के जारण का वर्णन किया है, इसका कारण यह है कि गंधक अत्यन्त क्षुधावर्धक है पारद में गन्धक जारण किये बिना स्वर्ण आदि का जारण करने पर पारद में क्षुधा (बुभुक्षा, भूख) उत्पन्न नहीं होती है, जिससे वह स्वर्ण आदि धातु को पचा नहीं सकता है, इसलिये पारद में पाचक अग्नि की वृद्धि करने के लिये बार बार गन्धक का जारण करना चाहिये, इससे पारद का मुखकरण होता है, इसलिये सर्व प्रथम गन्धक जारण यहां पर लिखी गई है।

गन्धक जारण से पारद के समुख होने पर उसमें स्वर्ण आदि के जारण का विधान लिखा गया है।

(१) गन्धकजारण मादौ कुर्यादथ जारणं सुवर्णस्य ।
जलधर सत्वस्य ततो जारणमथ सर्वलोहानाम् ॥
(आयुर्वेदप्रकाश, १।२२५)

(२) जारणं व्योमसत्वस्य सर्वसत्वस्य जारणम् ।
गर्भवाह्य द्रुतिः पश्चात् सुवर्णस्य तु जारणम ॥
(रसकामधेनु, पृष्ठ ३२३)

(२) विना गन्धेन ये मर्त्याः कुर्वते धातु जारणम् ।
न क्षुधा जायते सूते जीर्यन्ते धातवोऽपिन ॥
तस्माद्गन्धः पुनर्जार्यः सूते वह्नि विवृद्धये ॥
(रसचिन्तामणि)

(३) तत्र मुख करणार्थं गन्धक जारणा प्रथमतउच्यते ।
(रसपद्धति टीका, ४४ पृष्ठ)

(४) उक्तरीत्यादिसिद्धस्य सूतस्य समुखस्य च ।
हेमादिजारणं कुर्यात्...............................॥
(रसकामधेनु ३३० पृष्ठ)

जारण कर्म की दुर्लभता तथा आवश्यकता।

सब रस शास्त्रों में जारण कर्म को दुर्लभ माना गया है, परन्तु बिना जारण किये पारद अपना गुण, रोगनाशन (देहसिद्धि) तथा स्वर्ण आदि निर्माण रूप रसायन कर्म (लोहसिद्धि, धातु वादयाकीमियागिरी) करने में समर्थ नहीं होता, इसलिये शास्त्राभ्यास और गुरुपरम्परा से ज्ञान प्राप्त

करने इस आवश्यक जारण कर्म का प्रयत्न करना चाहिये। यथा—

(१) रसागमेषु सर्वेषु दुर्लभं जारणं मतम्।

(रसकामधेनु, ३३० पृष्ठ)

(२) रसगुणबलि जारणं विनाऽयं न खलु रुजां हरणक्षमो रसेन्द्रः।
अजारयन्तः पविहेमगन्धं वाञ्छन्ति सूतात्फलमप्युदारम्॥

(आयुर्वेदप्रकाश, अ० १।११४)

(३) गन्धक जारणरहितः संशुद्धोऽपि रसो योगेषु न योज्यः,
गदहन्तृत्वशक्त्यनुदयात्। (आयुर्वेदप्रकाश, अ० १।११३)

(४) अजारित रसो देवि ? नैव कुर्यान्निजं गुणम्।
तस्मात्प्रयत्नः कर्त्तव्यो जारणायां चवार्त्तिकैः॥

(रसकामधेनु, ३३० पृष्ठ)

(जारणाफलम्)

फलञ्चास्य प्रोक्तं स्वयं महेश्वरेण—

सर्वपापक्षये जाते प्राप्यते रस जारणा।
तत्प्राप्तौ प्राप्तमेवस्याद्विज्ञानं मुक्तिलक्षणम् ॥१०८॥
मोक्षाभिव्यञ्जकं देवि ? [1]जारणा साधकस्य तु।
[2]यावन्न जीर्यते सूतस्तावत्तु न च निर्वृत्तिः ॥१०९॥

---

१ 'जांरणा' इति पाठान्तरं आयुर्वेदीयग्रन्थमालायां मुद्रितायुर्वेद प्रकाशे। २ 'श्लोकार्धो' ऽयं रसेन्द्रचिन्तामणौ मुद्रितायुर्वेद प्रकाशे च नोपलभ्यते, रसार्णवाद्रसकामधेनावुद्धृतपाठेऽस्ति, ततएवात्रोद्धृतोऽस्माभिः।

वल्वस्तुपिंण्डिकादेवि-? रसेन्द्रोलिङ्गमुच्यते ।
मर्दनं ३चन्दनं चैव ग्रासः ४पूजाऽभिधीयते ॥११०॥
यावद्दिनानि ५देवेशि ? वह्निस्थोधार्यते रसः ।
६तावद्वर्ष सहस्राणि शिवलोके महीयते ॥१११॥
दिनमेकं रसेन्द्रस्ययो ददाति हुताशनम् ।
द्रवन्तितस्य पापानि कुर्व न्नपि न लिप्यते इत्यादि
॥११२॥

प्र०—स्वयं महेश्वरप्रोक्त' पारदजारण फलमाह—सर्वेति-मुक्तिलक्षणं =जीव मुक्ति कारणम् । स्पष्टमन्यत। अत्रानुष्टप् छन्दः ॥ १०८-११२ ॥

ज्ञातव्यम—इमे श्लोका रसेन्द्रचिन्तामणितः (अ० ३-४३ । ४७) उद्धृता माधवेन, रसार्णवाच्चेमे रसेन्द्रचिन्तामणा बुद्धृताः ।

पारद जारण का फल ।

उ०—स्वयं महादेव जी ने पारद के जारण का फल इस प्रकार कहा है--कर्म फल भोगने से सब पापों का क्षय होने पर पारद को जारण करने में सफलता मिलती है, इस.के प्राप्त करने पर जीवन्मुक्ति का कारण स्वरूप विज्ञान ही

३.'वन्दनं' ४ विधीयते इति पाठान्तरं रसन्द्रचिन्तामणौ। ५ 'वह्निस्थोजारणे धार्यते रसः' इति पाठान्तरं रसेन्द्रचिन्तामणौरसकामधेनाबुद्धृते च पाठे।६ 'दश' इति मुद्रितायुर्वेद प्रकाशे 'युग' इति रसकामधेनाबुद्धृते च पाठे पाठान्तर मस्ति ।

प्राप्त हो जाता है। हे पार्वती ! पारद का यह जारण कर्म, साधक की जीवन्मुक्ति का सूचक है। क्योंकि जब तक पारद का जारण नहीं होता, तब तक साधक को जीवन्मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती है। हे पार्वती ! खरल जलहरी स्वरूप, पारद शिवलिङ्ग स्वरूप, पारद की मर्दन क्रिया (घोटना) चन्दन-स्वरूप और ग्रास पूजा स्वरुप कहा जाता है, जब तक जारण कर्म में पारद को अग्नि पर रखा जाता है, उतने वर्षों तक वह साधक शिव लोक में पूजित होता है, जो साधक जारण कर्म में पारद को एक दिन अग्नि देता है, उसके पाप दूर हो जाते हैं और करने पर भी उनमें नहीं फलता है ॥ १०८-११२ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक, रसेन्द्रचिन्तामणि से उद्धृत किये हैं और रसेन्द्रचिन्तामणि में रसार्णव से उद्धृत किये गये हैं। रस कामधेनु में भी यह पाठ रसार्णव से उद्धृत किया गया है।

जारणादि संस्कृतपारदस्य फलाधिक्यमाह—

विपिनौषधिपाकसिद्धमेतद्घृततैलाद्यपि दुर्निवारवीर्यम् ।
किमयं पुनरीश्वराङ्गजन्माघन जाम्बूनदचन्द्रभानुजीर्णः ॥ ११३ ॥

प्र० – जारणादि संस्कृत पारदस्य फलाधिक्यमाह – विपिनेति—यदा विपिनौषधि पाकसिद्धं =शतावर्यादि वनौषधि पाकसाधितम्, एतत् = चरकाद्युक्तं घृततैलाद्यपि दुर्निवारवीर्यं = दुःखेन निवारयितुं शक्यं वीर्यं = प्रभावोयस्य तत् = बहुप्रभावशालि भवति। तदा पुनर्यद्ययमीश्वराङ्गजन्मा = शिववीर्यत्वेन प्रसिद्धः पारदः घनम् = अभ्रकम्, जाम्बूनद = सुवर्णं, चन्द्रः = रजतं, भानुः

=ताम्रं जीर्णं = जारणादि संस्कारै र्जारितं यस्मिन्तादृशः स्यात्तर्हि किं वक्तव्यम्। अयं भावो यदा साधारण वनौषधि संस्कारसिद्धं साध्य रोगेषु प्रयुक्तं घृततैलादिक मपि बहुप्रभाव-शालिभवति तदा अभ्रकसुवर्णादि विशिष्ट धातौषधि जीर्णपारदस्य प्रभावस्त्वसाध्यरोगेष्वपि फलवत्वात् केनापि न वक्तुं शक्यते। उक्तमपि—

जारणा आदि संस्कारों से संस्कृत पारद का विशेष फल।

उ०—जब शतावर आदि बन (जंगल) की औषधियों से पकाये गये चरक आदि मुनियों द्वारा वर्णित घृत तथा तैल आदि भी अत्यन्त प्रभावशाली होते हैं फिर तब अभ्रक, सुवर्ण (सोना) चाँदी तथा ताम्र (तांबा) का जारण किये हुये महादेव जी के वीर्य स्वरूप पारद के विषय में क्या कहना है अर्थात् जब बन की साधारण औषधियों से पकाये गये घृत तथा तैल आदि में इतना अधिक रोग नाशक प्रभाव होता है तो फिर अभ्रक सुवर्ण आदि विशिष्ट धातु रूप औषधियों को जारण किये हुये पारद के असाध्य रोग नाशक प्रभाव के विषय में क्या कहा जा सकता है अर्थात् इसीलिये साध्य रोगों में प्रयुक्त घृत आदि की अपेक्षा असाध्य रोगों में प्रयुक्त होने वाला पारद अत्यन्त श्रेष्ठ है। यथा—

साध्येषुभेषजं सर्व मीरितं तत्ववेदिना।
असाध्येष्वपि दातव्यो रसोऽतः श्रेष्ठ उच्यते॥

साध्येषु भेषजं सर्व मीरितं तत्ववेदिना।
असाध्येष्वपि दातव्यो रसोऽतः श्रेष्ठ उच्यते॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० ३ श्लोक ३) से उद्धृत किया है।

ज्ञातव्यम् = श्लोको ऽयं रसेन्द्र चिन्तामणितः (अ० ३ श्लोक ३) उद्धृतो माधवेन ।

(जारणाद्य संस्कृत पारदस्य निष्फलत्वम्)

रसगुणबलि जारणं विनाऽयं खलुरुजां हरणक्षमो रसेन्द्रः ।
न जलदकलधौतपाकहीनः स्पृशति रसायनतामिति प्रतिज्ञा ॥१३४॥

प्र०—जारणाद्य संस्कृत पारदस्य निष्फलत्वमाह–रसेति-अयं रसेन्द्रः = पारदः, रसा = षड् गुणाः = भागायस्यबलेः स-रसगुणबलिः = षड्गुणगन्धकस्तस्य जारणं = जीर्णतोत्पादनं विना रुजां = रोगाणां हरणक्षमः = नाशनसमर्थो न भवति खलु निश्चयेन, अप्रेऽप्युक्तमायुर्वेदप्रकाशे 'गन्धकजारणा = रहितः संशुद्धोऽपिरसो योगेषु न योज्यः, गदहन्तृत्वशक्त्यनुदयात्' अतः षड्गुणगन्धकजीर्ण एव पारदो रोग नाशको भवतिनान्यथा। किञ्च जलदम् = अभ्रं, कलधौतं = सुवर्णं तयोः पाकेन हीनः = अभ्रकस्वर्णपाक रहितः, पारदोरसायनतां = जराव्याधिनाशनत्वं न स्पृशति = नैव प्राप्नोति, इति प्रतिज्ञा*।

ज्ञातव्यम्—श्लोकोऽयं रसेन्द्रचिन्तामणितः (अ० २ श्लो० ५) उद्धृतो माधवेन । रसतरङ्गिण्या (तरंग ५ श्लो० १०१) षड्गुणगन्धक जारण प्रयोजनसूचकः श्लोको ऽस्यैवानुवादरूपोऽस्ति ।

जारण आदि से असंस्कृत पारद की निष्फलता।

उ०—यह पारद छै गुने (षड्गुण) गन्धक को जारण किये बिना रोगों को नाश करने में समर्थ नहीं होता है और

* 'प्रसिद्धिः' इति पाठान्तरं रसेन्द्रचिन्तमणौ ।

अभ्रक तथा स्वर्ण के पाक (जारण संस्कार) से रहित पारद, रसायन के योग्य नहीं होता है, ऐसी प्रतिज्ञा है ॥ ११४ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक, रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० २ श्लोक ५) से उद्धृत किया है। रसतरङ्गिणी (तरंग ५ श्लोक १०१) का षड्गुणगन्धक जारण प्रयोजन सूचक आधा श्लोक, आयुर्वेद के इसी श्लोक का अनुवाद मात्र है। यथा—

रसगुणबलिजारणा विहीनो
गदगणवारणतां तु नैति नूनम्।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि गन्धक जारण किये बिना पारद, रोग नाशक नहीं हो सकता है। यथा—

१-गन्धकजारणरहितः संशुद्धोऽपि रसो योगेषु न योज्यः, गदहन्तृत्वशक्त्यनुदयात्। (आयुर्वेदप्रकाश, अ० १।३३)

२-अजारितरसो देवि ! नैव कुर्यान्निजं गुणम्।

(रसकामधेनु, ३३० पृष्ठ)

(अभ्रसत्वादि जारणस्यावश्यकता)

अजारयन्तः पविहेमगन्धंवाञ्छन्ति सूतात्फलमप्युदारम्।
क्षेत्रादनुप्तादपि सस्यजातं कृषीवलास्तेभिषजश्चमन्दाः।११५

प्र०—अभ्रसत्वादि जारणस्यावस्यकतामाह—अजारयन्त इति—येभिषजः = वैद्याः, पविहेमगन्धं = पविः = वज्राभ्रकं, हेम = सुवर्णं, गन्धं = गन्धकं, ग्रासप्रमाणविधिना अजारयन्तः सूतात् = अजारिताभ्रादि पारदात् उदारं जराव्याधि विनाशकत्वाद्युत्कृष्टं फलमपि वाञ्छन्ति, ये चकृषीबलाः = कृषकाः,

अनुप्तात् = बीजवपन रहितादपिक्षेत्रात सस्यजातं = अन्नराशिं वाञ्छन्ति, ते उभयेभिषजः कृषकाश्चमन्दाः = मूर्खाः, सन्तीति शेषः। अत्रोपजाति वृत्तम् ॥११५॥

ज्ञातव्यम्—श्लोकोऽयं रसेन्द्रचिंतामणितः (अ० ३ श्लो० ४) उद्धृतो माधवेन।

अभ्रकसत्व आदि के जारण की आवश्यकता।

उ०—जो वैद्य ग्रास प्रमाण की विधि से अभ्रक, स्वर्ण तथा गन्धक को पारद में बिना जारण किये ही, उस अजारित अभ्रक आदि पारद से रसायन वृद्धावस्था (बुढ़ापा) तथा मृत्यु नाशन) रूप उत्तम फल को चाहते हैं और जो किसान बिना बोये हुये खेत से भी अन्न राशि प्राप्त करने की इच्छा करते हैं, वे दोनों (वैद्य तथा कृषक) ही मूर्ख हैं ॥११५॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक, रसेन्द्रचिन्तमणि (अ० ३, श्लोक ४८) से उद्धृत किया है।

घनरहित बीज जारणसम्प्राप्तदलादि सिद्धि कृतकृत्याः।
कृपणाः प्राप्यसमुद्रं वराटिकालाभसन्तुष्टाः ॥११६॥

प्र०—घनेति—घनम् = अभ्रकसत्वं, तेन रहितं यदन्यद्बीजं = स्वर्णादिकं तस्य जारणेन सम्प्राप्ताया दलादिसिद्धिस्तया कृतकृत्याः = सफला धातुवादिनः समुद्रं प्राप्य विराटिकालाभेन = सुन्दर कपर्दिकाप्राप्त्या सन्तुष्टाः कृपणा क्षुद्रहृदया इव प्रसन्ना भवन्ति। अयं भावो यथा उदारहृदयाः समुद्रं प्राप्य मौक्तिकैः प्रसन्ना कृपणास्तु वराटिकाभिरेव प्रसन्ना भवन्ति, तथैव साधा ण

पुरुषाः दलादिसिद्धया = समताम्रादि सुवर्णादेर्बीज प्रक्षेपेण सुवर्णत्वाद्यापादनरूप दलादिसिद्धया सन्तुष्टा जायन्ते परन्तु सिद्धास्तु = पूर्णसिद्धयैव = स्वर्णादिरहिते केवलेताम्रादावेव बीज-भूतद्रव्यप्रक्षेपणेन सुवर्णत्वाद्यापादनरूप पूर्णसिद्धयैव सन्तुष्टा भवन्ति। अत्रार्याछन्दः ॥११६॥

ज्ञातव्यम्—श्लोकोऽयं रसेन्द्रचिन्तामणितः (अ० ३) श्लोक ६२) उद्धृतो माधवेन।

उ०—(अभ्रकसत्व रहित केवल स्वर्ण आदि बीज के जारण करने से प्राप्त हुई दलादि सिद्धि (समान ताम्र और स्वर्ण में बीज रूप स्वर्ण डालने से स्वर्णदल) (सोने के वर्क निर्माण रूपदलादि सिद्धि से हुये कृतार्थ धातुवादी (ताम्रादि से स्वर्ण बनाने के इच्छुक) पुरुष, समुद्र पर पहुंच करके वल सुन्दर कौड़ियों को प्राप्त कर प्रसन्न हो जाने वाले कृपण मनुष्य की भांति प्रसन्न हो जाते हैं. अर्थात् जिस प्रकार उदार हृदय पुरुष, समुद्र पर पहुंच कर मोतियों को पाकर प्रसन्न होते हैं; परन्तु कृपण कौड़ियाँ पाकर ही प्रसन्न हो जाते हैं, इसी प्रकार साधारण पुरुष दलादि सिद्धि से ही प्रसन्न हो जाते हैं, किन्तु सिद्ध पुरुष पूर्ण सिद्धि (स्वर्णादि से रहित केवल ताम्र आदि में स्वर्ण आदि बीज द्रव्य डालकर स्वर्ण निर्माण रूप पूर्ण सिद्धि) को प्राप्त करके ही सन्तुष्ट होते हैं ॥ ११६ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० ३, श्लोक ६२) से उद्धृत किया है, तथा आगे भी फिर (२५७ वाँ श्लोक) लिखा गया है।

अभ्रक जारणमादौ गर्भद्रुतिजारणं च हेम्नोऽन्ते।
यो जानातिनवादी वृथैव सोऽर्थच्चयं कुरुते ॥११७॥

प्र०—अभ्रकेति—यो वादी=ताम्रादेः स्वर्णादिकरणेच्छुकः; धातुवादी=आदावभ्रकसत्व जारणम्, अन्तेहेम्नः=सुवर्णस्यगर्भद्रुति पूर्वकं जारणं न जानाति=न वेत्ति स वृथैवार्थच्चयं=धनहानिं कुरुते, यश्चैतज्जानाति स च वृथैवार्थच्चयं न कुरुते इतिन भावः। अत्रार्याछन्दः ॥११७॥

ज्ञातव्यम्—श्लोकोऽयं रसेन्द्रचिन्तामणितः (अ० ३, श्लो० ६७).उद्धृतो माधवेन।

उ०—जो धातुवादी (ताम्र आदि से स्वर्ण आदि बनाने का इच्छुक) पुरुष, प्रथम अभ्रकसत्व जारण कर अन्त में गर्भद्रुति की सहायता से स्वर्ण का जारण करना नहीं जानता है, वह व्यर्थ में ही धन की हानि न करता है और जो इसको जानता है वह अवश्य ही धन की हानि नहीं करता है ॥११७॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक, रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० ३, श्लोक ६७) से उद्धृत किया है और इसी अध्याय में आगे भी (२६१ श्लोक) लिखा जायगा अभ्रक जारण आदि कर्म रसार्णव में निम्न लिखित रूप से वर्णन किया गया है।

गगनं जारये दादौ सर्व सत्वमतः परम्।
ततो माक्षिक सत्वं च सुवर्णं तदनन्तरम् ॥(रसार्णव)

बाल जारणा में ही प्रारम्भ में अभ्रक का जारण किया जाता है। वृद्ध (बद्ध) जारणा में प्रथम गन्धक का किया करते हैं। जैसा कि आगे इसी प्रथम अध्याय के २२५ श्लोक में लिखा है।

गन्धक जारणमादौ कुर्यादथ जारणां सुवर्णस्य ।
जल धरसत्वस्य ततो जारणमथ सर्वलोहानाम् ॥

(बहिर्धूम)

गन्धक जारित सूतस्य फलमुक्तं शिवागमे–

तुल्ये तु गन्धकेजीर्णे शुद्धाच्छत गुणोरसः ।
द्विगुणे गन्धकेजीर्णे सर्वथा सर्वकुष्ठहा ॥११८॥
त्रिगुणे गन्धकेजीर्णे सर्वजाड्यविनाशनः ।
चतुर्गुणे तथा जीर्णे वलीपलित नाशन ॥११९॥
गन्धे पञ्चगुणे जीर्णे क्षय क्षय करोरसः ।
षड्गुणे गन्धके जीर्णे सर्वरोग हरोरसः ।
अवश्यमित्युवाचेदं देवीं श्रीभैरवः स्वयम् ॥१२०॥

प्र०—शिवागमोक्त बहिर्धूम गन्धकजारित पारदस्य फल-माह–तुल्य इति—तुल्येतुसमान गन्धके जीर्णे = गन्धकेन जीर्णे = मूर्च्छनाविधिनामृते सति अत्र तृतीयार्थे मी रसः = पारदः, शुद्धात् = पारदाच्छतगुणो रोगनाशनो भ ति, द्विगुणे गन्धके-

जीर्णे पारदः सर्वथासर्व कुष्ठहा = सर्वकुष्ठनाशको भवति, त्रिगुणे गन्धकेजीर्णे, पारदः सर्वजाड्यविनाशनो भवति, चतुर्गुणे गन्धके जीर्णे पारदः वलीपलितनाशनो भवति, पञ्चगुणेगन्धके जीर्णे रसः = पारदः, क्षयक्षयकरः = क्षयनाशनो भवति, षड्गुणेगन्धके जीर्णे रसः = पारदोऽवश्यं सर्वरोगहरः = कृत्स्नतम सम्पूर्णरोगनाशनोभवति, इति = इत्थमिदं श्रीभैरवः स्वयं देवाः उवाच जगाद। अत्रानुष्टप् छन्दः ॥११८-१२०॥

ज्ञातव्यम्—इमे श्लोका रसेन्द्रचिंतामणितः (अ० ३ श्लो० ४६-५१) उद्धृतो माधवेन ।

शिवागम में वर्णित बहिर्धूम गन्धक जारि पारद का फल—

उ०—मूर्च्छना विधि के अनुसार समान भाग गन्धक के साथ जीर्ण होने पर, मृत पारद, शुद्ध पारद की अपेक्षा सौ गुना अधिक रोग नाशक हो जाता है। दो गुना (दुगुना) गन्धक के साथ जीर्ण हो जाने पर मृत पारद सब प्रकार के कुष्ठों का नाशक हो जाता है तीन गुना (तिगुना) गन्धक के साथ जीर्ण होने पर मृत पारद सब प्रकार की जकड़ाहट का नाशक हो जाता है। चार गुना (चौ गुना) गन्धक के साथ जीर्ण होने पर, मृत पारद वली (बुढ़ापे की झुर्रियाँ) तथा पलित (बालों का सफेद हो जाना) रोग को नष्ट करने वाला हो जाता है, पाँच गुना गन्धक के साथ जीर्ण होने पर मृत पारद क्षय रोग नाशक हो जाता है और छे गुना गन्धक के साथ जीर्ण होने पर मृत पारद अवश्य ही कष्ट साध्य

सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करने वाला हो जाता है, इस प्रकार यह श्री भैरव ने स्वयं देवी से कहा था ॥ ११८-१२० ॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० ३, श्लोक ४६-५१) से उद्धृत किये हैं।

पारद के साथ जितना अधिक गन्धक जारण किया जायगा, पारद में उतने ही अधिक गुण बढ़ते जाते हैं, पारद सोलह गुना सौ गुना और हजार गुना गन्धक जारण करने का उल्लेख रस शास्त्रों में मिलता है। यथा—

यथा स्याज्जारणा बह्वी तथा स्याद् गुणदो रसः।
षड्गुणे गन्धके जीर्णे रसो भवति रोगहा ॥

सम जीर्णे भवेद् बालो यौवनस्थश्चतुर्गुणः।
वृद्धः षोडशजीर्णः स्यात् कुर्यात्कर्म पृथक् पृथक् ॥

कुमारो रोगसमने तरुणो देह रक्षणे।
वृद्धो विध्यति लोहेषु ज्ञात्वैवं च समाचरेत् ॥

(रुद्रयामल, रसकामधेनु, ३०५ पृष्ठ)

जीर्णे शतगुणे गन्धे शतवेधी भवेद्रसः।
सहस्रगुणिते जीर्णे सहस्रांशेन वेधयेत् ॥

(रस रत्नाकर, आयुर्वेद प्रकाश श्लोक)

षड्गुण गन्धक जारण की विधि आयुर्वेद प्रकाश के इसी प्रथम अध्याय में निम्न लिखित रूप से लिखी है—

सूते गन्धे रसैकांशं निक्षिप्य मृदुखल्व के।
तावत्संकु दयेत्पिण्डं भवेद्वा ताम्रपात्र के ॥

ततुल्यं गन्धकं दत्वारुद्ध्वा तल्लोहसम्पुटे।
पुटयेद्भूधरेयन्त्रे यावज्जीर्यति गन्धकः॥
एवं पुनः पुनर्गन्धं दद्यादाषड्गुणं बुधाः॥

(अन्तर्धूम गन्धक जारित पारद गुणाः)

अन्यत्रापि–

समे गन्धेतु रोगघ्नो द्विगुणे राजयक्ष्मजित्।
जीर्णेतु त्रिगुणे गन्धे कामिनी दर्पनाशनः ॥१२१॥
चतुर्गुणे तु तेजस्वी सर्वशास्त्रार्थ सिद्धिदः।
भवेत्पंचगुणे सिद्धः षड्गुणे मृत्युजिद्भवेत् ॥१२२॥

'षड्गुणे रोगघ्न' १इत्युक्तं २यत्तत्तु ३(बहिर्धूम) मूर्च्छायामेवाधि मन्तव्यं, तत्र गन्धकस्य ४समग्रसस्यजारणया अभावात्। ५ (स्वर्णादिपिष्टिकायामपि रीतिरियम्) अत्रतु 'समेगन्धे' इति तृतीयार्थे सप्तमी; (तेन समेन-गन्धेनतुल्यगन्धेन जीर्णपारदो मूर्च्छनाविधिना मृतः, तत्फलं रोगघ्नता) एवं द्विगुणादिष्वपि व्याख्येयमिति प्रतिभाति ॥१२३॥

---

१ इति यदुक्तं, २ तत्तु, ३ बहिर्धूम मूर्च्छायाम् ४ समग्ररसस्य, जारणाभावात् ५ इति पाठान्तरे रसेन्द्रचिन्तामणौ ५ इत्यधिकः पाठो रसेन्द्रचिन्तामणौ।

प्र०—अन्तर्धूम गन्धक जारित पारदस्य फलमाह—सम इति—समे गन्धे तु=इति तृतीयार्थे सप्तमीतेन गन्धेन, तुल्य गन्धकेन जीर्णः पारदो मूर्च्छनाविधिनामृतः पारदो रोगघ्नः= सामान्य रोगनाशनो भवेत् द्विगुणे गन्धके जीर्णे मृतः पारदो राजयक्ष्मजित्=यक्ष्महरो भवेत्. त्रिगुणे गन्धके जीर्णे मृतपारदः पुंस्त्वशक्तिवर्धकस्यात् कामिनी दर्पनाशनः=मानिनी मानभञ्जनो भवेत्, चतुर्गुणे गन्धके जीर्णे तेजस्वी सर्वशास्त्रार्थ सिद्धिदः=सर्व शास्त्रार्थ सिद्धिप्रदोभवेत्। पञ्चगुणे गन्धके जीर्णे सिद्धः षड्गुणे च गन्धके जीर्णे मृत्युजित्=मृत्युनाशनो भवेत्। अत्रानुष्टुप् छन्दः ॥ १२१-१२२ ॥

ज्ञातव्यम्—इमे श्लोका रसेन्द्र चिन्तामणितः (अ० ३, श्लोक १०-१२) उद्धृता माधवेन।

रसतरङ्गिण्याः (तरंग ५, श्लोक १०६-१-८) षड्गुणबलि जीर्णस्य रसराजस्य गुणसूचकाः श्लोकाएते षामेव श्लोकानामनु-वादरूपाः सन्ति।

ननु पूर्वे षड्गुण गन्धक जारित पारदः सर्व रोगहरः प्रोक्तो चमृत्युजित् प्रोक्त इति पूर्वापर विरोधमाशङ्क्य स्वयं च तं परिहर न्नाह ग्रन्थकारः—

षड्गुण इति-यत्पूर्व (१२० श्लोक) षड्गुण गन्धक जारित पारदः सर्व रोगहरः इति यदुक्तं तद्गुण कथनं बहिर्धूम मूर्च्छनाया मेवाधिगन्तव्यं, तत्र=बहिर्धूममूर्च्छनायाँ गन्धकस्य समग्र जारणायाभावात्, यतोऽन्तर्धूममूर्च्छनायामेव गन्धकस्य समग्रजारणं भवतीति ततएवात्रपूर्वापेक्षया (मृत्युजित्) गुणा-धिक्यम् ॥१२३॥

ज्ञातव्यम्—एष पाठोऽपि रसेन्द्रचिन्तामणितः (अ० ८, सूत्र १२) उद्धृत माधवेन ।

शिवागम में वर्णित अन्तर्धूम गन्धक जारित पारद का फल

उ०—मूर्च्छना विधि के अनुसार समान भाग गन्धक के साथ जीर्ण होने पर सेवन किया गया मृत पारद, सामान्य रोगों को नाश करने वाला हो जाता है, दो गुने गन्धक के साथ जीर्ण होने पर मृत पारद राजयक्ष्मा नाशक हो जाता है, तीन गुने गन्धक के साथ जीर्ण होने पर मृत पारद पुंस्त्वशक्ति बढ़ाने के कारण स्त्रियों के मद को दूर करने वाला होता है, चार गुने गन्धक के साथ जीर्ण होने पर मृत पारद तेजस्वी तथा सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थ की सिद्धि देने वाला हो जाता है, पाँच गुने गन्धक के साथ जीर्ण होने पर सिद्ध हो और छै गुने गन्धक के साथ जीर्ण होने पर मृत पारद, मृत्यु नाशक हो जाता है ॥ १२१-१२२ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० ३ श्लोक १०-११) से उद्धृत किये हैं।

रस तरङ्गिणी (तरंग ५, श्लोक १०६-१०८) में वर्णित षड्गुण बलि जीर्ण पारद के गुण सूचक श्लोक इन्हीं श्लोकों के अनुवाद मात्र हैं।

इन श्लोकों से पहिले १२ वें श्लोक में षड्गुणे गन्धके जीर्णे सर्व रोग हरो रसः) में छैगुने षड्गुणा गन्धक से जीर्ण पारद को सब रोगों का नाशक लिखा है और यहाँ पर इसको (षड्गुणे मृत्युजितभवेत्) मृत्यु नाशक माना है, इस पूर्व पर के विरोध का उत्तर यह है कि पहिले बहिर्धूम मूर्च्छना से षड्गुण अधिक जीर्ण पारद को सब रोगों का नाशक लिखा है, क्यों कि बहिर्धूम मूर्च्छना में गन्धक का सम्पूर्ण रूप से जारण नहीं होता है, अन्त मूर्च्छना में ही गन्धक का सम्पूर्ण रूप से

जारण होता है और यहाँ पर इसी अन्तर्धूम मूर्च्छना से षड्गुण गन्धक जीर्ण पारद को मृत्यु नाशक माना है, इस लिये पृथक् पृथक् मूर्च्छना से जीर्ण पारद का वर्णन होने से यहाँ कोई विरोध नहीं है, समे गन्धे यहाँ तृतीया के स्थान में सप्तमी विभक्ति है ॥ १२३ ॥

ज्ञातव्य—रसेन्द्रचिन्तामणि में इससे आगे स्वर्णादि पिष्टिकायामपि रीति रियम् यह पाठ अधिक मिलता है, उसका यह अर्थ है, कि इसी प्रकार बहिर्धूम मूर्च्छना से जारित स्वर्ण आदि की पिष्टी (पिट्ठी) के पारद में भी थोड़े गुण होते हैं। अन्तर्धूम मूर्च्छना से जारित स्वर्ण आदि की पिष्टी में बहुत गुण होते है। माधव ने यह पाठ भी रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० १२२ से उद्धृत है)

(अभ्रसत्वादि जीर्ण पारद गुणाः)

तस्माच्छत गुणो व्योमसत्वे जीर्णे तु तत्समे।
ताप्यखर्परतालादिसत्वे जीर्णे गुणावहः ॥१२४॥
हेम्नि जीर्णे सहस्रैकगुण*सम्पत्प्रदायकः ।
वज्रादि जीर्णसूतस्यगुणान्वेत्ति शिवः स्वयम्॥१२॥
देव्यारजो भवेद्गन्धो धातुः शुक्रं तथाऽभ्रकम् ।
आलिङ्गनेसमर्थौ द्वौप्रियत्वाच्छिवरेतसः ॥१२६॥
शिवशक्ति समायोगात्प्राप्यते परमं पदम् ।

---

* गुणसङ्घप्रदायकः' इति पाठांतरं रसेन्द्रचिंतामणौ ।

तस्माद्गन्धं विशुद्धं स्याज्जीर्यते शिवरेतसि।
यथा स्याज्जारणा वह्वी तथा स्याद् गुणदो रसः॥१२७

प्र०—अभ्रसत्वादि जीर्णपारदगुणानाह-तस्मादिति-तत्समे = पारदतुल्ये, व्योमसत्वे = अभ्रकसत्वे जीर्णेसति, तस्मात् = षड्गुणगन्धकजीर्णात् पारदात्, शतगुणः = शतगुण-विशिष्टः पारदोभवतीतिशेषस्तत्समे ताप्यादिसत्वे = ताप्यं = स्वर्णमाक्षिकं, खर्परः = रसकः, तालम् = हरितालम्, आदिनोपरसादीनां ग्रहणं तेषां सत्वे जीर्णे गुणावहः = गुणान् वहतीतिताद्दशो बहु-गुणयुतोभवति, हेम्नि स्वर्णे जीर्णे सहस्रैकगुण गुणसम्पत्प्रदा-यकः = षड्गुणगन्धकजीर्णपारदात्सहस्रगुणविशिष्टोभवति वज्रादि जीर्णसूतस्य = हीरकादि जीर्णपारदस्य गुणान् शिवः स्वयंवेत्ति नान्यः, गन्धः गन्धकोदेव्याः = पार्वत्या शक्तिरूपाया प्रकृतेः रजः = भवेत् आर्तवो तथाऽभ्रकं शुक्रं वीर्यः शिवरेतसः पारदस्य प्रियत्वाद्वाह्वौ आलिङ्गनं = आश्लेषण समर्थौ भवतः। शिवशक्ति समायोगात् = पारदगन्धकसंयोगात्परमं पदं मोक्षंप्राप्यते, तस्मा-द्विशुद्धं गन्धकं शिवरेतसि = पारदेजीर्यते, यथा वह्वी अधिका जारणा = गन्धकादिजारणास्या त्तथा गुणदः रसः पारदःस्यात्। अत्रानुष्टप् छन्दः ॥१२४-१२७॥

ज्ञातव्यम्—श्लोकाइमे रसेन्द्रचिन्तामणित (अ० ३ श्लो० ५३।५६) उद्धृता माधवेन, रसेन्द्रचिन्तामणौ च रुद्र यामला दुद्धृताः रससिन्धावपीमे श्लोकाःसन्ति, यतो बृहद्रसराज सुन्दरे ततएव उद्धृताः।

अभ्रसत्वादि जीर्ण पारद के गुण ।

उ०—पारद के समान भाग अभ्रकसत्व के जीर्ण होने पर, जीर्ण पारद षड्गुण गन्धक जीर्ण पारदकी अपेक्षा सौगुना अधिक गुण वाला हो जाता है, स्वर्ण माक्षिक, खर्परिया, तथा हरिताल आदि (उपरस आदि) का सत्व जीर्ण होने पर जीर्ण पारद बहुत गुणों वाला हो जाता है, स्वर्ण के जीर्ण होने पर जीर्ण पारद, षड्गुण गन्धक जीर्ण पारद की अपेक्षा हजार गुना अधिक गुण वाला हो जाता है। हीरा आदि जीर्ण हुये पारद के गुणों को तो स्वयं महादेव ही जानते हैं और दूसरा कोई नहीं जानता है। गन्धक पार्वती (शक्ति रूप प्रकृति) आर्तव रूप है, तथा अभ्रक वीर्य रूप है, शिवजी के वीर्य रूप पारद के प्रिय होने के कारण यह दोनों पारद से आलिङ्गन करने में समर्थ होते हैं. शिव रूप पारद और शक्ति रूप गन्धक के संयोग से मोक्ष प्राप्त होती है इस लिये शुद्ध गन्धक, महादेव जी के वीर्य रूप पारद में जीर्ण हो जाता है, गन्धक आदि का जितना अधिक जारण होता है, पारद उतना ही अधिक गुणदायक हो जाता है ॥ १२४-१२७ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह श्लोक रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० ३, श्लोक ५३-५६) से उद्धृत किये हैं और रसेन्द्र-चिन्तामणि में 'रुद्रयामल' तन्त्र से उद्धृत किये हैं, क्यों कि रसकामधेनु (पृष्ठ ३७५) में भी यह श्लोक रुद्रयामल तन्त्र से ही उद्धृत किये गये हैं, रससिन्धु में भी यह श्लोक है और उससे बृहद्रसराज सुन्दर में उद्धृत किये गये हैं।

अथादौ गन्धक जारणम् ।
(रसपरिमाणनिर्देश पूर्वकं मूर्च्छना प्रकारः)

तत्तु तत्तन्त्र१ निगदित देवता परिचरणसमनन्तरं२ तत्तच्छोधन प्रक्रियाभिर्बह्वीभिः संक्षिप्ताभिर्वा३ शुद्धस्य४ रसेन्द्रस्य५ तृणारणिमणि जन्यवह्निन्यायेन तारतम्यमवलोकमानैः सूक्ष्ममतिभिः पलार्धेनापि६ संस्कारः कर्त्तव्यः सूतकस्यचेति रसार्णववचनाद् व्यावहारिक तोलकद्वय७ प्रमाणेनापि कञ्चन८ सूतंसमादाय, तत्रगन्धको नवनीताख्यः संशोध्यजार्य आपड्गुणमिति ॥१२८॥

प्र०—रसपरिमाण निर्देशपूर्वकं मूर्च्छना प्रकारमाह-तत् = गन्धकजारणं तु, तत्तन्त्रेषु = तेषुशास्त्रेषु, निगदिताः = अभीष्टरूपेण वर्णिता, या देवतास्तासां परिचरणस्य = पूजनस्य समनन्तरं बह्वीभिः = अनेकरूपाभिः, संक्षिप्ताभिर्वा तत्तच्छोधनप्रक्रियाभिः = ताभिस्ताभिः प्रसिद्धाभिः शोधनक्रियाभिः शुद्धस्य रसेन्द्रस्य = पारदस्य तृणारणि मणिजन्यवह्निन्यायेन = तृणजन्यवह्निरल्पश्रमसाध्यः, अरणिजन्यवह्नि मन्थनादिक्रियया प्रयास

---

१ तत्तत्तंत्र, २स्मरणानंतरं इति पाठांतरं रसेन्द्रचिंतामणौ. ३ इति पाठोनास्ति रसेन्द्रचिंतामणौ, ४ परिशुद्धानां, ५ रसे द्राणां, इति च पाठांतरं रसेन्द्रचिंतामणौ, ६ पलार्धेनैव इतिपाठांतरं रसकामधेनौ उद्धृते रसार्णवस्य श्लोके, ७ परिमाणेनापि, परिशुद्धारसोमूर्च्छितश्च इति च पाठांतरं रसेन्द्रचिंतामणौ ।

तरसाध्यः, सूर्यकान्तमणिजन्य वह्नि स्त्वन्वेषणादि ना प्रयास तमसाध्यः, इत्थं तारतम्यं = तरतमस्थभावरूपमवलोकमानैः सूक्ष्ममतिभिः, रससिद्धैः सूतकस्य = पारदस्य च पलार्धेनापि- संस्कारः कर्तव्य इति रसार्णव वचनात्सुश्रुतोक्तमानरीत्या व्यावहारिक तोलक द्वयप्रमाणेनापिकंचन सूतं = पारदं समादायगृहीत्वा तत्र पारदे नवनीताख्यः = नवनीताह्वयोगन्धकः संशोध्य- षड्गुणं मूर्च्छनारीत्या षड्गुणपर्यन्तं जार्य इति ॥१२८॥

ज्ञातव्यम्—एषसूत्रो रसेन्द्रचिन्तामणितः (अ० २ सू० ३) उद्धृतो माधवेन ।

गन्धक जारण ।

पारद का परिमाण तथा उसकी मूर्च्छना ।

उ०—उन उन रसशास्त्रों में इष्ट देव रूप से वर्णित देवताओं के पूजन के पश्चात् उन उन शास्त्रों में प्रसिद्ध, विस्तृत अथवा संक्षिप्त, पारद शोधन की प्रक्रियाओं से शुद्ध हुये पारद का, थोड़े परिश्रम से उत्पन्न तृणाग्नि (तिनकों की अग्नि) मथने आदि के अधिक परिश्रम से उत्पन्न अरण्यग्नि (अरनी लकड़ियों को रगड़ने से उत्पन्न अग्नि) और अन्वेषण आदि के बहुत अधिक परिश्रम से उत्पन्न सूर्य कान्तमणि की अग्नि, इस क्रम से श्रेष्ठता का क्रम देखने वाले सूक्ष्म बुद्धि वाले रससिद्ध पुरुषों ने, आधा पल पारद का भी संस्कार करना चाहिये रसार्णव ग्रन्थ के इस वचन के अनुसार सुश्रुत के मान (तोल) की रीति से, व्यावहारिक दो तोला के परिमाण में किसी प्रकार से शुद्ध किये गये पारद को ग्रहण

करके उसमें छैगुना (षड्गुण) तक आमलासार गन्धक का जारण अन्तर्धूम मूर्च्छन अथवा बहिर्धूम मूर्च्छना की विधि से करना चाहिये ॥ १२८ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह सूत्र (गद्य का अंश) रसेन्द्र चिन्तामणि (अ० २, सू० ३) से उद्धृत किया है। गन्धक जारण करने से पारद की अग्नि पाचन शक्ती तीव्र होती है जिससे यह धातुओं को जीर्ण कर लेता है। यथा—

तस्माद्गन्धं पुनर्जार्यं सूते वह्निविवृद्धये।
(रसचिन्तामणि)

सामान्येन मृतपारद सेवन फलम् ।

ततोमारणविधिनाहत्वा मात्रयाऽशितः पथ्ययोगेन "समेगन्धेतुरोगघ्न" इत्यादिप्रोक्तफलकारी रसोभवति॥१२९॥ रसायिनगणार्थिमुपयोगि पारद सेवनविधिः। अथ यदि रसायन गुणेच्छाचेद्गन्धक जारणोत्तरं हेमाभ्र सत्वादि यथाविभवं गन्धक जारणोत्थिते रसेप्रोक्तविधिना संसाध्य जारयित्वा मारणविधिना हत्वामात्रयाचेत्री करणपूर्वकं पथ्य योगेन मण्डला वधिषण्मासं वर्षैकंद्विवर्षंत्रिवर्षंवासेव्यःतदातदुक्तफलमाप्नोति। यावज्जीवं सेव्योवा सम्पत्तिश्चेत्। यद्वा यथावकाशं पौनः पुन्येन संसेव्यः ॥१३०॥

प्र०—सामान्येन मृतपारदसेवनफलमाह्—ततइतिततः=षड्गुणगन्धक जारणा नन्तरं मारणविधिना पारदं हत्वा=भस्मरूपं

कृत्वा, मात्रया मात्रापूर्वकं, पथ्ययोगेन = पथ्यपूर्वकञ्चाशितः = भक्षितोरसः = पारदः समेगन्धे तु रोगघ्न इति १२१-१२२ संख्यक श्लोकेषुवर्णित फलयुक्तोभवति ॥१२६॥

रसायन गुणार्थिना मुपयोगि पारद सेवनविधिमाह–अथेति–अथः रोग नाशनानन्तरं यदि पारद सेवनेन रसायन गुणेच्छा = जराव्याधिनाशक दीर्घायुष्यादि प्राप्ति लालसा चेत्तर्हि गन्धक जारणानन्तरं हेमाभ्रसत्वादिः स्वर्णाभ्रकसत्वादि यथाशक्ति गन्धक जारणोत्थिते गन्धक जीर्णे रसे = पारदे प्रोक्तविधिना संसाध्य जारयित्वा मारणविधिनाहत्वा = भस्मरूपं विधाय, मात्रया = मात्रापूर्वकं क्षेत्रीकरणं पञ्चकर्मानन्तरं यैर्यैर्भेष जैर्रोगनाशनम् तत्पूर्वकं पथ्ययोगेन = पथ्यसेवनेन मण्डलावधि = चत्वारिंशद्दिन पर्यन्तं षण्मासं वर्षैकं द्विवर्षं त्रिवष वा पारदः संसेव्यः = सेवनीयः । तदा साधकः तदुक्त फलं = हेमादि जीर्ण रसायनोक्तफलं लब्धवष मितदीर्घायुष्य रूपं फलमाप्नोति । वा प्रथमचेद्यदि सम्पत्तिः स्यात्तर्हि हेमादि जीर्णः पारदोयावज्जीवं = जीवनपर्यन्तं सेव्यः, यद्वा यथावकाशम् = अवकाशानुसारं पौनः पुन्येन = बारम्बारं संसेव्य = सेवनीयः ॥ १३० ॥

सामान्य रूप से मृतपारद के सेवन का फल ।

उ०—फिर षड्गुण (छै गुना) गन्धक जारण करने के पश्चात् फिर मारण विधि से पारद को मार (भस्मरूप में) कर मात्रा पूर्वक पथ्य सेवन के साथ खाने से "समेगन्धे आदि" १२१-१२२ श्लोकों में वर्णित अन्तर्धूम गन्धक जारित पारद के गुण वाला यह पारद हो जाता है ॥ १२६ ॥

रसायन के गुण चाहने वाले पुरुषों के लिये उपयोगी पारद की सेवन विधि।

यदि किसी पुरुष को पारद के सेवन करने से रसायन के समान दीर्घ आयु आदि की प्राप्ति की इच्छा हो तो षड्गुण गन्धक जारण करने के पश्चात् उस गन्धक जीर्ण पारद में स्वर्ण तथा अभ्रक सत्व आदि का जारण कर, फिर मारण विधि से मारण (भस्म) कर मात्रा पूर्वक स्वेदन तथा पञ्च कर्म के पश्चात् रोग नाशक औषधियों से रोग-नाशद्वारा क्षेत्री-करण कर पथ्य पूर्वक स्वर्णादि जीर्ण पारद की भस्म को एक मण्डल (४० दिन) तक अथवा छै मास, एक वर्ष, दो वर्ष या तीन वर्ष तक सेवन करना चाहिये, तब वह हेमादि जीर्ण रसायन के सेवन से एक लाख वर्ष की दीर्घायु रूपफल को प्राप्त करता है अथवा यदि सम्पत्ति हो तो सम्पूर्ण जीवन पर्यन्त इसको सेवन करे अथवा अवकाश के अनुसार बार-बार सेवन करना चाहिये ॥ १३० ॥

ज्ञातव्य—रसायन सेवन के गुण चरक संहिता में निम्न निर्दिष्ट रूप से लिखे हैं—

दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणंवयः।
प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रियबलं परम्॥
वाक्सिद्धिं प्रणतिं कान्तिलभते ना रसायनात्॥
(चरक चि० अ० १, पाद १, श्लोक ७-८)

क्षेत्रीकरण—सब प्रकार की रसायन सेवन करने से पूर्व शरीर का क्षेत्रीकरण करना चाहिये, अन्यथा रसायन का

फल नहीं मिलता है, स्नेहन स्वेदन तथा पञ्च कर्म से शरीर को शुद्ध कर रोग नाशक औषधियों से रोग नाश करने पर शरीर का क्षेत्रीकरण होता है जैसा कि आयुर्वेदप्रकाश के इसी प्रथम अध्याय में आगे स्वयं माधव ने लिखा है:—

(१) क्षेत्री कृत निजदेहः कुर्वीत रसायनं मतिमान्।

(२) कर्त्तव्यं क्षेत्रकरणं सर्वस्मिंश्च रसायने॥
नाक्षेत्रकरणाद्देवि ? किञ्चित्कुर्याद्रसायनम्॥

(३) स्निग्धं स्विन्नं विरिक्तं च नीरुजं सिद्धभेषजैः।
एतत्क्षेत्रं समासेन रसबीजार्पण क्षमम्॥

हेम (स्वर्ण) जीर्ण रसायन का फल आयुर्वेदप्रकाश के इसी प्रथम अध्याय में रसार्णव के आधार पर निम्न प्रकार से लिखा है—

भस्मनो हेम जीर्णस्य लक्षायुः फलभक्षणात्।
विष्णुरुद्रशिवत्वं च द्वित्रिचतुर्भिराप्नुयात्॥

रोगहननेच्छुकानामुपयोगि पारदसेवनविधिः।

अथ केवलं रोगहननेच्छा चेत्स्वेदनादि दीपनान्तैः संस्कारैः रसं संशोध्य प्रोक्तविधिना गन्धकेन संमूर्च्छ्य मात्रया पथ्ययोगेन संसेव्येयावदारोग्यमिति ॥१३१॥

प्र०—रोगहननेच्छुकानामुपयोगि पारदसेवनविधिमाह—अथेति—अथयदि केवलं रोगहननेच्छा = रोगजिघांसा चेत्तर्हि स्वेदनादि दीपनान्त संस्कारैः रसं = पारदं संशोध्य प्रोक्तविधिना =

पूर्व प्रतिपादित बहिर्धूमान्तर्धूम रीत्या गन्धकेन संमूर्च्छ्य =मूर्च्छ-यित्वा मात्रया = मात्रापूर्वकं पथ्ययोगेन = पथ्यसेवनेनपारदो यावदारोग्यम् स्वास्थ्य लाभपर्यन्तं संसेव्यः = सेवनीयः ॥१३१॥

रोग के विनाश के इच्छुक पुरुषों के लिये उपयोगी पारद की सेवन विधि ।

उ०—यदि केवल रोग को नष्ट करने की इच्छा हो तो स्वेदन आदि दीपन संस्कार पर्यन्त संस्कारों से पारद को शुद्ध कर पहिले लिखी गई अन्तर्धूम अथवा बहिर्धूम की रीति द्वारा गन्धक के साथ पारद को मूर्च्छित कर मात्रा पूर्वक पथ्य सेवन करते हुये स्वास्थ्य लाभ पर्यन्त सेवन करना चाहिये ॥ १३१ ॥

रसादि प्रयोगोपयोगिपारदः ।

अथ रसादौ पाकावलेह गुटिका चूर्णा दौवा रसयोगे विहिते यथा वचनं संशुद्धो मूर्च्छितो गन्धकजीर्णोवा मृतोऽमृतोवारसोयोज्य इति गुरुसंकेतः ॥ १३२ ॥

प्र०—रसादि प्रयोगोपयोपारदमाह—अथेति—अथ रसापाकावलेहादौ रसयोगे = पारदयोगे विहिते यथावचनं = यथाविधि संशुद्धो मूर्च्छितो गन्धहेमादि जीर्णो मृतोऽमृतोवारसः = पारदो योज्य इति गुरुसंकेत एतेनाशुद्धः पारदो न कदाचिदपि योज्य इत्यपि व्यज्यते ॥ १३२ ॥

रस तथा पाक आदि के प्रयोग के उपयोगी पारद ।

उ०—यदि रस, पाक, अवलेह, गोली अथवा चूर्ण आदि किसी प्रयोग में पारद के डालने का विधान हो तो उस प्रयोग में विधि पूर्वक शोधित तथा मूर्च्छित अथवा गन्धक या सुवर्ण के साथ जारण किया गया मृत (भस्मरूप)अथवा अमृत (भस्म रहित) पारद डालना चाहिये, ऐसा गुरु (आचार्य) का संकेत है ।

ज्ञातव्य—यद्यपि मुनिवर चरक आदि के पाक, अवलेह तथा गुटिका (गोली) आदि के प्रयोग, रोगों को नष्ट करने में समर्थ हैं, परन्तु पारद के मिश्रण से इन प्रयोगों की रोग नाशक शक्ति अधिक तीव्र हो जाती है, इसलिये पाक अवलेह तथा गुटिका आदि में पारद डालने का विधान शास्त्रकारों ने स्वीकार किया है, जिससे कि मनुष्य शीघ्र ही निरोग होजाता है। जैसा कि रसेन्द्रचिन्तामणि ने लिखा है—

सारनीनां चरकमतं फलमूलाद्यौषधयदविरुद्धम् ।
तद्यदि रसानुपीतं भवेत्तदात्वरितमुल्लाघः ॥

(रसेन्द्रचिन्तामणि, अ० ८ श्लोक ३)

रसादि प्रयोगानुपयोगिपारदः ।

गन्धक जारण रहितः संशुद्धोऽपि रसो योगेषु न योज्यः, गदहन्तृत्वशक्त्यनुदयात् । हेमादि जीर्णोऽप्य शुद्धस्तु कुत्रापि न योज्यः, वैगुण्य प्रदत्वात् । एवं सर्व

उपरसाधातव उपधातवो रत्नान्यु परत्नानि विषोपविष-प्रभृतयश्चशुद्धः सन्तोमृता अमृतावा यथावचनं योज्या नाशुद्धा इतिदिक् ॥ १३३ ॥

प्र०—रसादि प्रयोगानुपयोगिपारदमाह—गन्धकेति—गन्धक जारण रहितः = बहिर्धूमान्तर्धूमविधिना गन्धक जारण रहितः संशुद्धोऽपिरसः = पारदो योगेषु = रसपाकावलेहा गुटिकादि प्रयोगेषु नयोज्यः, गदहन्तृत्व शक्त्यनुदयात् = रोगनाशक प्रभावा प्रादुर्भावात् । यथा प्रोक्तं प्राक् "रसगुणावलि" १०४ श्लोके। हेमादि जीर्णोऽप्यशुद्धस्तु पारदः कुत्रापि प्रयोगे न योज्यः: वैगुण्य-प्रदत्वात् = हानिकरत्वात् । एवं सर्वे उपरसादयः शुद्धः सन्तोमृता अमृतावा यथावचनं = रस शास्त्र निर्देशानुसारं योगेषु योज्याः अशुद्धास्तु न कदाचिदपि योज्या इतिदिक् = इति सर्व चतुर-सम्मतम् ॥ १३३ ॥

रस आदि के प्रयोग का अनुपयोगि पारद ।

उ०- बहिर्धूम अथवा अन्तर्धूम की विधि से गन्धक जारण किये बिना, केवल शुद्ध भी पारद का रस, पाक, अवलेह तथा गोली आदि के प्रयोगों में उपयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि गन्धक जारण किये बिना, पारद में रोगनाशक शक्ति ही उत्पन्न नहीं होती है यह सिद्धान्त है, इसका वर्णन पहिले भी निम्नलिखित ११४ वें श्लोक में किया जा चुका है।

रसगुणबलि जारणांबिनाऽयं न खलु रुजांहरणक्षमोरसेन्द्रः।

सुवर्ण आदि जीर्ण भी पारद का अशुद्ध रूप में किसी प्रयोग में उपयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि अशुद्ध पारद का

प्रयोग हानिकर होता है। इसी प्रकार सब गन्धक आदि बीस उपरस, स्वर्ण आदि सात धातु, स्वर्णमाक्षिक (सोना माखी) आदि सात उपधातु, हीरा (वज्र) आदि नौ रत्न, वैक्रान्त आदि उपरत्न, रक्तक-वत्सनाभ आदि विष और आक का दूध, उपविष इत्यादि शुद्ध कर के ही मृत अथवा अमृत (मारण किये बिना) रूप में रसशास्त्र के निर्देश के अनुसार उपयोग में लाने चाहिये, इनका अशुद्ध रूप में कभी भी उपयोग नहीं करना चाहिये ॥ १३३ ॥

ज्ञातव्य—उपरसों के शोधन आदि की विधि आयुर्वेद-प्रकाश के दूसरे अध्याय में धातुओं के शोधन आदि की विधि, तीसरे अध्याय में। उपधातुओं के शोधन आदि की विधि, चौथे अध्याय में, रत्न तथा उपरत्नों के शोधन आदि विधि पाँचवे अध्याय में और विष तथा उपविषों के शोधन आदि की विधि छठे अध्याय में लिखी गई है।

(पारदसेवनेन प्राप्तव्य पुरुषोऽर्थद्वयम्)

इह खलु पुरुषेण दुःखस्य निरुपाधि द्वेषविषयत्वात्तदभावश्चिकीर्षितव्यो भवति, सुखमपि निरुपाधि प्रेमास्पदतया गवेषणीयं, तदेतत्पुरुषार्थ द्वयम् ॥ १३४ ॥

*अभावस्यान्यत्वात् (इत्यधिकपाठोरसेन्द्रचिन्तामणौ)

---

* एष कोष्ठकान्तर्गतः पाठ आयुर्वेद ग्रन्थमालायां मुद्रितायुर्वेद प्रकाशे नास्ति।

क्वचित्तु-तदेतत्पुरुषार्थ अभावस्यानन्यत्वाद्दुःखाभावस्यासुखलक्षणानुरूपत्वाच्च इति पाठान्तरम्।

प्र०—पारदसेवनेन प्राप्तव्य पुरुषार्थद्वयमाह—इहेति-इह-परिवर्त्तनशीले सुखदुःख मोहात्मके संसारे दुःखस्य=आध्यात्मिकाधि दैवताधि भौतिकस्वरूप शारीरिक मानसिकात्मकाप्यवाकष्टस्य, निरुपाधि द्वेषविषयत्वात्=प्रेमादि संसर्गरूपोपाधिरहितो निरुपाधिरूपो यो द्वेषस्तद्विषय त्वात्, तदभावः=तस्य दुःखस्या भावः=विनाशश्चिकीर्षितव्यः= कर्तुमेषितव्यो भवति, सर्वे पुरुषानिरुपाधि द्वेषविषयस्य विनाशंकर्तु मिच्छन्तीतिभावः। सुखमपि निरुपाधिप्रेमास्पदतय =द्वेषादि संसर्गरूपोपाधि रहितं निरुपाधियत्प्रेम तदास्पदतया गवेषणीयम् =अन्वेष्टव्यं भवति, पुरुषाः सुख मन्विष्यन्तीतिभावः। तदेतत्=दुःखनिवृत्ति सुखप्राप्तिलक्षणं पुरुषार्थ द्वयमस्ति, दुःखनिवृत्ति सुखप्राप्तिरूपं पदार्थ द्वयमेव पुरुषार्थ पदेन प्रसिद्ध मस्तीत्यर्थः यथोक्तम्॥ १३४॥

(१) भक्षणात्परमेशान्ति हन्तिताप त्रयंरसः। (रसार्णवे)

(२) भुक्तिं मुक्तिं वयः स्तम्भं लोहसिद्धिं च खेगतिम्।
ननु इच्छा भोगफलावाप्तिः॥ (रसार्णवे)

अभावस्यान्य त्वादिति तु हेतुः, रूपम्। तद्यथा—सुखं हि दुःखाभावरूपं त्वान्न ततः पृथक्पदार्थोऽस्तीतिचेच्छृणु-अभावस्यान्यत्वादिति, अभावस्य=दुःखाभावस्य, अन्यत्वात्= सुखादन्यत्वात् तेन दुःखाभावस्य सुखस्य च पृथक् पृथक् पदार्थत्वस्वीकाराद्द्वयोरपि प्राप्तेः पुरुषार्थत्वं ज्ञेयम्।

ज्ञातव्यम्—एष सन्दर्भो रसेन्द्र चिन्तामणित (अ० १।६) उद्धृतो माधवेन।

तद्देतत्पुरुषार्थः =इत्यादिके पाठान्तरे तु निम्नलिखितो ऽर्थो भवति—तद्देतत् = दुखाभाव सुखरूपं पुरुषार्थः एक एव पुरुषार्थोति, अभावस्य =दुःखाभावस्यानन्यत्वात्= सुखाभिन्नत्वात्, सुखलक्षणानुरूपत्वाच्च केवलं दुखा भाव एक एव पुरुषार्थः । अस्य मतस्यायंभावः यत्सर्वे पुरुषा दुःखविनाशार्थं सुख प्राप्त्यर्थं, प्राप्तसुखस्य वृद्ध्यर्थं च यतन्ते । यथोक्तं मष्टाङ्गहृदये महाभारते च ।

(१) सुखार्थाः सर्व भूतानां मताः सर्वा प्रवृतयः।
(अ० ६ श्लो० ४२)

(२) इह खल्वस्मिनश्च लोके वस्तु प्रवृत्तयः सुखार्थमभि धीयन्ते, न ह्यतः परं त्रिवर्गफलं विशिष्ट तरमस्ति ।

(महाभा० शान्ति पर्व)

सुखं चैतत्तृष्णा जन्य दुःखस्याभाव रूपमेकमेव पुरुषार्थपदेन निगद्यते ।

यथार्थस्तु—आत्मनः प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम्, आत्मनोऽनुकूलवेदनीयं सुखमिति शास्त्र प्रामाण्येन दुःख सुखयोः द्वयोरपि पृथक्त्वेनैवस्थितिः, किञ्च न केवलं तृष्णाजन्य दुःखस्याभावरूप मेव सुखमस्ति, तृष्णोत्पत्ति मन्तरा स्वाभाविक तयाऽपि यत्रकुत्राप्याकस्मिक मधुर संगीत श्रवण प्राकृतिकच्छटा दर्शनादिना ऽपि सुख मुत्पद्यते इति दुखनिवृत्ति लक्षणं सुख प्राप्तिलक्षणं च पृथगेव पुरुषार्थो द्वयं विज्ञेयम् ।

पारद के सेवन से प्राप्त होने योग्य दो पुरुषार्थ ।

उ०—इस परिवर्तनशील तथासुख दुःख मोह मय संसार में, आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक

शारीरिक तथा मानसिक रूप दुख, प्रेम आदि के संसर्ग से रहित होने के कारण सब पुरुषों के द्वेष का विषय है अर्थात् सब पुरुष दुःख से द्वेष करते हैं और इसीलिये सब इस दुःख के विनाश की इच्छा करते हैं, इसी प्रकार सुख भी, द्वेष आदि के संसर्ग से रहित, प्रेम का पात्र होने के कारण सब के द्वारा ढूँढा जाता है अर्थात् सब सुख का अन्वेषण करते (ढूंढते) हैं, इस प्रकार दुख की निवृत्ति (मोक्ष) तथा सुख की प्राप्ति स्वरूप यह दो पुरुषार्थ हैं, जो कि पारद के सेवन से प्राप्त होते हैं, जैसा कि शास्त्रों में लिखा है—

(१) भक्षणात्परमेंशान्ति ? हन्ति तापत्रयं रसः।

(रसार्णव)

(२) भुक्तिं मुक्तिं वयः स्तम्भं लोहसिद्धिं चखे गतिम्।
एतत्कौतूहलं लोके प्राप्नोतिरसराजतः।

इच्छाभोगफलावाप्ति......................॥ (रस सारे)

रसेन्द्रचिन्तामणि में अभावस्यान्यत्वात् इतना अधिक पाठ है, यह दो पुरुषार्थों के होने में हेतु प्रकट करता है, क्यों कि यहाँ पर यह शङ्का उत्पन्न होती है कि सुख, दुख का अभाव स्वरूप होने से उससे अलग कोई दूसरा पदार्थ नहीं है, इसका समाधान करने के लिये 'अभावस्यात्यत्वात्' यह हेतु दिया जाता है, अर्थात् अभाव सदैव दूसरा पदार्थ होता है इस प्रकार दुःख का अभाव सुख से अलग पदार्थ है, इस लिये दुःख का अभाव और सुख के अलग-अलग होने के कारण दोनों की प्राप्ति ही पुरुषार्थ है।

किसी-किसी पुस्तक में तदेतत्पुरुषार्थः—इत्यादि अधिक पाठ मिलता है इसका यह निम्न लिखित अर्थ है,

दुख का अभाव सुख रूप एक ही पुरुषार्थ है, क्यों कि दुःख अभाव सुख से भिन्न न होने से सुख रूप ही है, इस लिये केवल दुःख का अभाव रूप एक ही पुरुषार्थ है।

इस मत का यह भाव है कि सब पुरुष दुःख का विनाश कर सुख प्राप्त करने और प्राप्त हुये सुख की वृद्धि के लिये इच्छा करते हैं—जैसे कि अष्टाङ्गहृदय और महाभारत में लिखा है।

(१) सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वं प्रवृत्तयः॥

(अ० हृ० भू० अ० २)

(२) इहखल्वमुस्मिश्चलोके वस्तुप्रवृत्तयः सुखार्थमभि-धीयन्ते, नह्यतः परं त्रिवर्गफलं विशिष्ट तरमस्ति॥

(महाभा० शान्तिपर्व)

और सुख तृष्णा से उत्पन्न हुए दुख का अभाव रूप एक ही पुरुषार्थ है।

वास्तव में आत्मा के प्रतिकूल ज्ञात होने वाला दुख है और आत्मा के अनुकूल ज्ञात होने वाला सुख है। इस दर्शन शास्त्रों के प्रमाण से दुख तथा सुख अलग अलग पदार्थ सिद्ध होते हैं और केवल तृष्णा से उत्पन्न हुए को अभाव रूप ही सुख नहीं होता है, किन्तु स्वाभाविक रूप से भी जहां कहीं भी अचानक मधुर संगीत के सुनने और सुन्दर प्राकृतिक शोभा को देखने आदि से भी सुख उत्पन्न होता है, इसलिये दुख की निवृति तथा सुख की प्राप्ति रूप यह पृथक् पृथक् दो पुरुषार्थ जानने चाहिये।

यद्यपि रस सार के निम्नलिखित श्लोक में पारद के सेवन से धम, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की प्राप्ति का वर्णन मिलता है। यथा—

धर्मार्थ काममोक्षाख्याः पुरुषार्थश्चतुर्विधाः।
सिध्यन्ति नात्र सन्देहो रसराजप्रसादतः॥

परन्तु इनमें से धर्म, अर्थ और काम इन तीनों को सुख प्राप्ति रूप तथा मोक्ष को दुख निवृत्ति रूप पुरुषार्थ के अन्तर्गत मान लेने से यहाँ पर वर्णित दो पुरुषार्थों से कोई विरोध नहीं प्रतीत होता है।

(आपातरमणीयसुखानाम् परिहरणीयत्वम्)

१अत्र स्रक्चन्दन २ललनादि विषयाणां सत्यपि तत्कारणत्वे (३सुखकारणत्वे) नान्तरीयक दुःख संभेदादनर्थ परम्परा परिचितत्वान्मूर्खा ४णामाकाशो द्रङ्कवदाभासमानत्वादनै कान्तिकत्वाद्विरोधिनां युगपद दृश्यमानत्वादत्यन्ताविरहितत्वा च्च परिहरणीयम् ॥१३५॥

प्र०—आपातरमणीय सुखानां परिहरणीयत्वमाह-अत्रेति —अत्र = अस्मिन् संसारे, स्रक् = कुसुमादि रचितमाला, चन्दनं, ललना = कामिनी, आदि विषयाणां, कुसुममालादि विषयाणां,

१ किञ्च, २ वनिता, इतिच पाठान्तरं इतिरसेन्द्रचिन्तामण्यौ। ३ एसकोष्ठकान्तर्गतःपाठो रसेन्द्रचिन्तामणौ नास्ति। ४ कोषाण्डकवत्।

तत्कारणत्वे, दुखनिवृत्ति सुखप्राप्ति हेतुत्वे, सुखहेतुत्वेवा सत्यपि, नान्तरीयकदुःख संभेदात् = अन्तरा = विना भवमन्तरीयं तदेवान्तरीयकं तद्विपरीतं आन्तरीयकं अवश्यं भावियद्दुःखं तेन संभेदात् = मिश्रीभावात्, अनर्थानां = दुःख सम्बन्ध जनितनिष्टानां परम्परया परिचितत्वात् मूर्खाणाम् = अज्ञानाम्, आकाशोद्रङ्कवत् = गन्धर्वनगरवत्, आपातरमणीयम् आभासमानत्वात् = प्रतीयमानत्वात्, अतएवाऽनैकान्तिकत्वात् = व्यभिचरितत्वात्, विरोधिनां = पारस्परिक विरोधमावहतां चैषां युगपत् = एककालावच्छेदेन, एकस्मिन्नेवसमये, अदृश्यमानत्वादत्यन्तता = नित्यतातद्विरहितत्वात्, अनित्यत्वाच्चेत्यर्थः, परहरणीयत्वं = परित्याज्यत्वमस्ति। अयंभावः, यद्यपि स्रक्चन्दन ललितादि विषयादुःखविघातक्य सुखजनकाश्चसन्ति, तथापितेष्ववश्यं भाविदुःखसम्बन्धातु दुःखजन्यानिष्ट बाहुल्यम्, आपातरमणीयत्वं च प्रतीतिः, अनित्यता, पारस्परिक विरोधिता चास्ति, अतः इमे आपातरमणीयाविषया विद्वद्वरेण्यैः परित्याज्या आत्यन्तिक सुखजनकोपायाश्चावलम्बनीयाः ॥ १३५ ॥ रसेन्द्र चिन्तामणितः (अ० १-१०) उद्धृतो माधवेन ।

ज्ञातव्यम् —अयं सन्दर्भो सांख्य तत्व कौमुद्या निम्नलिखितकारिका च माश्रित्य विरचिताश्चैषो भाति—

दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपाघातके हेतौ ।
दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्त तो भावात् ॥

देखने मात्र में सुन्दर प्रतीत होने वाले सुखों का परित्याग ।

उ०—इस संसार में फूलों आदि की माला, चन्दन तथा स्त्री आदि विषय, दुख के विनाश तथा सुख प्राप्ति के हेतु

अथवा केवल सुख के हेतु होने पर भी, अवश्य ही होने वाले दुख के सम्बन्ध होने से, उस दुख के सम्बन्ध से उत्पन्न अनेक अनिष्टों से युक्त होने के कारण, मूर्खों को देखने मात्र से ही सुन्दर गन्धर्व नगर के समान प्रतीत होने से, इसीलिये व्यभिचारी (नियमपूर्वक न होने वाले) होने से परस्पर विरोधियों की एक समय में उपस्थिति न होने के कारण तथा अनित्य होने के कारण त्यागने के योग्य हैं।

इसका यह भाव है कि—यद्यपि फूलों की माला चंदन तथा स्त्री आदि विषय, दुख के नाशक और सुख के उत्पादक हैं, तथापि उनमें दुखों का सम्बन्ध, उस सम्बन्ध से उत्पन्न अनिष्टों की अधिकता, देखने मात्र से सुन्दर प्रतीत होना, अनित्यता और परस्पर विरोधी भाव होने से, वे देखने मात्र में सुखदायक विषय विद्वान् पुरुषों को त्याग देने योग्य हैं और निश्चित रूप से स्थायी दुख की निवृत्ति तथा सुख की प्राप्ति कराने वाले उपाय ग्रहण करने चाहिये ॥ १३५ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह प्रकरण, रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० १।५०) से उद्धृत किया है और यह सांख्यतत्त्वकौमुदी की निम्नलिखित कारिका के आधार पर बनाया गया है—

दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ ।
दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात् ॥

(आत्यन्तिक सुखजनका ज्ञानयोगाद्युपायाः)

१एकान्तात्यन्ततः २पुनरेतेऽभ्युपायाः खलु हरिहर ब्रह्माण इवतुल्याएव सम्भवन्ति—ज्ञानयोगः, ४प्राणयोगो, रसयोगश्चेति ॥ १३६ ॥

प्र०—आत्यन्तिक सुखजनकान् ज्ञानयोगाद्युपायानाह्—एकान्तेति—एकान्ततः = अव्यभिचरित रूपेण नियतत्वेनेत्यर्थः अत्यन्ततः = नैरन्तर्येण सदैवस्थायित्व रूपेण, दुःखनाशकाःसुखजनकाश्चये,ऽभ्युपायाः सन्तितेपुनः खलुज्ञानयोगः = आत्मज्ञानयोगः प्राणयोगः, रसयोगश्चेति त्रयो हरिहरब्रह्माणः विष्णु शिव ब्रह्माण इव तुल्याः = परस्परं समानाः एव नतु गौणप्रधान भाव मापन्नाः सम्भवन्ति । अयं भावो यथा सृष्टिसृजनरक्षण प्रलयरूपं स्वीयं नियत कर्म कुर्वन्त विधि हरिहरा न परस्परं गौणप्रधानभावमापद्यन्ते ऽपितु समाना एव संतिष्ठन्ते । तथैवाधिकारि भेदेन त्रयोऽमी ज्ञानादियोगा आत्यन्तिक सुख जनकोपायाः सन्ति । तद्यथा सत्व गुणप्रधानो विष्णुः सृष्टिरक्षणाधिकारी तथैव सात्विक पुरुषो ज्ञानयोगाधिकारी भवति । यथा तमोगुण प्रधानोमहादेवः सृष्टिप्रलयाधिकारी तथैव तामसिकःपुरुषो हठयोगावलम्ब्य प्राणयोगाधिकारी भवति । एवं यथा रजोगुणप्रधानो ब्रह्मासृष्टिसृजनाधिकारो तथैव राजसः पुरुषोऽपूर्व भोगमय रसयोगाधिकारी भवति ॥ १३६ ॥

---

१ एकान्तात्यन्तश्च, २ ते, ३ ह्युपायाः, ४ पवनयोगः—इति च पाठान्तरं रसेन्द्रचिंतामणौ ।

ज्ञातव्यम्—एष सन्दर्भो रसेन्द्र चिन्तामणितः (अ० १-११) उद्धृतो माधवेन ।

आत्यन्तिक (स्थाई) सुखजनक ज्ञानयोग आदि उपाय।

उ०—निश्चित तथा सदैव स्थाई रूप से दुःख नाशक तथा सुख को उत्पन्न करने वाले ज्ञानयोग, (आत्म ज्ञानयोग) प्राणयोग और रसयोग नाम के यह तीन उपाय विष्णु शिव तथा ब्रह्मा की भाँति आपस में समान ही हैं छोटे अथवा बड़े नहीं हैं—

इस का यह भाव है कि जिस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति रक्षा और प्रलय रूप अपने नियत कार्य को करते हुये ब्रह्मा, विष्णु और महादेव परस्पर छोटे और बड़े अधिकारी नहीं होते, किन्तु समान ही समझे जाते हैं, इसी प्रकार अधिकारी भेद से ये आत्म ज्ञानयोग आदि, समान रूप से स्थिर सुख प्राप्ति के उपाय हैं, अर्थात् जिस प्रकार सत्वगुण विशिष्ट विष्णु सृष्टि की रक्षा के अधिकारी हैं, उसी प्रकार सात्विक पुरुष आत्म ज्ञानयोग का अधिकारी होता है, जिस प्रकार तमोगुण विशिष्ट महादेव सृष्टि के प्रलय के अधिकारी हैं, उसी प्रकार तामसिक पुरुष हठयोग का अवलम्बन कर प्राणयोग के अधिकारी होते हैं और जिस प्रकार रजोगुण विशिष्ट ब्रह्मा सृष्टि की रचना (उत्पत्ति) के अधिकारी हैं, उसी प्रकार राजस पुरुष, अपूर्व भोगमय रसयोग के अधिकारी होते हैं ॥ १३६ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह प्रकरण रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० १-११) से उद्धृत किया है ।

(ज्ञानयोगादीनां तुल्यता)

ननुकथमेतेषां तुल्यतेत्यपेक्षायां ब्रूमः–मोक्षोपाये वृहद्वासिष्ठेभुशुण्डोपारव्याने वसिष्ठ वाक्यम्—

असाध्यः कस्यचिद्योगः कस्यचिज्ज्ञाननिश्चयः ।
द्वौ प्रकारौ ततो देवो जगाद परमः शिवः ॥
प्राणानां वा निरोधेन वासनानोदनेन च ।
तस्मादेतेषां समानत्वमनवद्यम् ॥ १३७ ॥

प्र०—ज्ञानयोगादीनां तुल्यता माह—नन्विति–ननु, एतेषां ज्ञानयोगादीनां कथं तुल्यता = परस्परं समानता अस्तीत्यपेक्षायां ब्रूमः = अत्र प्रमाणं वृद्द्वासिष्ठे = योगवसिष्ठनाम्नाप्रसिद्धे महारामायणे मोक्षोपाये = षष्ठे निर्वाण प्रकरणे त्रयोदशे सर्गे भुशुण्डोपाख्याने वसिष्ठवाक्यम् = रामं प्रतिवसिष्ठ वाक्यम् असाध्य इति कस्यचित् = विचार कुशलस्य सुकुमार चित्तस्य योगः = प्राणयोगोऽसाध्यः = प्राण संरोधजन्य कष्टत्वात् साधयितुमशक्यः कस्यचित् = विचार मूढस्य कठोरचित्तस्य ज्ञाननिश्चयः = आत्म ज्ञानयोगोऽसाध्यः, ततः = तस्मात्कारणात् परम = उत्कृष्टः देवः = दीव्यतीति देवः शिवः = शङ्करो द्वौप्रकारौ = विचारकुशलस्य ज्ञानयोगः, विचारमूढस्य च प्राणयोग इति द्वावुपायौ जगाद = उवाच । इत्थंहि प्राणयोगद्वारेण प्राणानां शरीरान्तः संचारिणां पञ्चसंख्यकानां निरोधेन = वशीकरणेन, प्राणायामेनेत्यर्थः, आत्म ज्ञान योग द्वारेण वासनानोदनेन = तृष्णा विनाशेन वा संसारोतरणं भवति तस्माद्धे तोरेतेषां ज्ञानयोगप्राणयोगाख्यानां समान-

त्वं = समान रूपेण हितकरत्वात् तुल्यत्वम्, अनवद्यं = निर्दोषमस्ति ॥ १३७ ॥

ज्ञातव्यम्—एष सन्दर्भो रसेन्द्रचिन्तामणितः (अ० १-१२) उद्धृतो माधवेन।

ज्ञान योग आदि की समानता।

उ०—यहाँ पर चित्त में यह शङ्का होती है कि यह ज्ञानयोग आदि किस प्रकार आपस में समान हैं, इस शङ्का का समाधान, बृहद्वासिष्ठ (योगवासिष्ठ महारामायण) के छठे निर्वाण प्रकरण के तेरहवें सर्ग में भुशुण्डोपाख्यान में श्रीरामचन्द्र जी से कहे गये ब्रह्मर्षिवसिष्ठ के नीचे लिखे गये वाक्य में है—

किसी विचारवान्, कोमलचित्त पुरुष के लिये प्राणयोग, प्राण रोकने में कष्ट होने के कारण करना असम्भव है और किसी विचार मूढ, कठोरचित्त पुरुष के लिये आत्म ज्ञान योग करना असम्भव है, इसीलिये देवों में श्रेष्ठ महादेव जी ने विचारवान् पुरुषों के लिये आत्म ज्ञान योग तथा विचारमूढ पुरुषों के लिये प्राणयोग यह दो उपाय कहे हैं, इस प्रकार प्राण योग द्वारा शरीर में घूमने वाली पाँच प्रकार की प्राणवायु को प्राणायाम से वश में करने से तथा आत्मज्ञान योग द्वारा तृष्णा का विनाश करने से संसार को पार कर फिर सुख रूप मोक्ष (जीवनमुक्ति) प्राप्त की जाती है। इस कारण यह आत्मज्ञान योग और प्राणयोग की समानता समान रूप से हितकर होने से निर्दोष है ॥ १३७ ॥

ज्ञातव्य –माधव ने यह प्रकरण रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० १।१२) उद्धृत किया है रसेन्द्रचिन्तामणि में निम्न-लिखित तीन श्लोक अधिक मिलते हैं—

नोचेत्संविदसुच्छ्वाणां करोषि तद्योगवान्।
द्वावेव समौराम ? ज्ञानयोगाविमौ स्मृतौ ॥

तथा रसार्णवे--

रसश्च पवनश्चेति कर्मयोगोद्विधास्मृतः।
मूर्च्छितो हरते व्याधिंमृतो जीवयति स्वयम् ॥
बद्धः खेचरतां कुर्याद्रसो वायुश्च भैरवि ?

इन नीचे के रसार्णव के श्लोकों में प्राणयोग तथा रसयोग की समानता दिखलाई है।

वास्तव में यह प्रकरण योग वाशिष्ठ से लिया गया है, योगवाशिष्ठ में यह पूर्ण प्रकरण निम्नलिखित प्रकार से है--

संसारोत्तरणे युक्तिर्योगशब्देन कथ्यते।
तां विद्धि द्विप्रकारांत्वंचित्तोपशम कारिणीम् ॥
आत्मज्ञानं प्रकारोऽस्यएकः प्रकटितोभुवि।
द्वितीयः प्राणसंरोध शृणु योऽयंमयोच्यते ॥
प्रकारौ द्वावपि प्रोक्तौ योगशब्देन यद्यपि।
तथाविरूढिमायातः प्राणयुक्तावसौभृशम् ॥
एको योगस्तथाज्ञानं संसारोत्तरणक्रमे।
समावुपायौ द्वावेव प्रोक्तावेकफलप्रदौ ॥
असाध्यः कस्यचिद्योगः कस्यचिज्ज्ञाननिश्चयः ॥

(रसयोगस्यसाध्यत्वम्)

तत्राद्ययोः केवलं पक्वकषायाणामपि कथञ्चनसाध्यत्वात्, परमेतु पुनर्भोगलोलुपानामप्यधिकारित्वात्ताभ्यां समीचीनोऽयमितिकस्य न प्रतिभाति ॥ १०८ ॥

प्र०—रसयोगस्य साध्यत्वमाह—तत्रेति—तेषु ज्ञानप्राणरस योगेषु, आद्ययोः ज्ञानयोग प्राणयोगयोः केवलं पक्वकषायाणामपि=रोग द्वेषादि रहितानामपि कथञ्चन=कष्टपूर्वकं कादाचित्कतया च साध्यत्वात्=साधयितुं शक्यत्वात् भोगलोलुपानाम्तु नितान्तमसाध्यत्वात्, चरमे=अन्तिमे रसयोगे तु पुनर्भोगलोलुपानां=विषयपरायणा नामपि पुरुषाणामधिकारित्वात्, ताभ्यां=ज्ञानयोगप्राणयोगाभ्याममुपेक्षया, अयं=रसयोगःसमीचीनःकस्यन प्रतिभाति, अपितु सर्वस्मै समीचीन प्रतिभाति रोचत इत्यर्थः॥१३८॥

ज्ञातव्यम्—एष सन्दर्भो रसेन्द्र चिन्तामणितः (अ० १-१४) उद्धृतो माधवेन ।

रसयोग की साध्यता ।

उ०—इन तीनों ज्ञानयोग, प्राणयोग तथा रसयोगों में से, पहिले दो ज्ञानयोग तथा प्राणयोग, रागद्वेष आदि से रहित पुरुषों को बड़े कष्ट से कभी-कभी सिद्ध होते हैं, भोग विलासियों को तो कभी भी सिद्ध नहीं हो सकते हैं और अन्तिम तीसरे रसयोग के सांसारिक भोगविलासों में तत्पर पुरुष भी अधिकारी होते हैं, इस लिये ज्ञानयोग तथा प्राणयोग

की अपेक्षा, यह रसयोग किस पुरुष को अच्छा नहीं लगेगा, अर्थात् यह रसयोग सरल होने से सब पुरुषों को अच्छा लगता है ॥ १३८ ॥

ज्ञातव्य– माधव ने यह प्रकरण, रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० १–१४) से उद्धृत किया है।

(रसयोगस्योपादेयता)

किञ्चास्य भगवन्निर्यासकतया सेवकानां स्वसम्भूतसकलधातुत्वापादकस्य भगवतो रसराजस्य गुणसिन्धोः कियन्तो *मूर्च्छनाः प्रसङ्गाल्लिख्यन्ते ॥ १३९ ॥

प्र०—रसयोगस्योपादेयतामाह—किञ्चेति–किञ्चास्य = पारदस्य भगवन्निर्यासकतया = ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशशः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैवषण्णां भगइतीरितः = इत्येवंषड्विध भगगुण युक्तस्य शिवस्य वीर्यरूपतया सेवकानां = रसायननिर्माणादितत्पराणां शिवभक्तानां हिताय स्वस्मात् = पारदात सम्भूतम् उत्पन्नं यत्सकलं = सम्पूर्णं – धातुत्वं = स्वर्णादिधातुत्वे रसरक्तादिधातुत्वञ्च तदापादकस्य = तत्प्रापकस्य = भगवतः = महामहिमा शालिनो रसराजस्य = पारदस्य गुणसिन्धोः = गुणसमाराद्दुधृताः कियन्तो मूर्च्छना पृषताः = मूर्च्छनाबिन्दवः प्रसङ्गात् = गुणवर्णनावसरत्वाल्लिख्यन्ते। पारदस्य धातुवादरीत्याः तात्रादे = सुवर्णादि निर्माणेन, भक्षणेन श्रेष्ठ रसरक्तादि धातूत्पादनेन च सकलधातुत्वापादकं प्रसिद्धमेवास्ति ॥ १३९ ॥

* पृषतः –इति पाठान्तरं रसेन्द्रचिन्तमणौ ।

ज्ञातव्यम्—एष सन्दर्भो रसेन्द्र चिन्तामणितः (अ० १-१५) उद्धृतो माधवेन ।

रसयोग की उपादेयता ।

उ०—इस पारद के ऐश्वर्य आदि छै गुणों से युक्त शिव जी के वीर्यरूप होने से, रसायन के निर्माण आदि में तत्पर शिवभक्तों के हित के लिये, स्वयं स्वर्णादि धातु, तथा रस रक्त आदि धातु बनाने वाले भगवान् पारद के गुण समुद्र लेकर कुछ मूर्च्छना रूप विन्दुओ का पारद के गुण निर्देश के अवसर में वर्णन करते हैं। धातुवाद (कीमियागिरी) में ताम्रादि से सुवर्ण आदि बना कर तथा चिकित्सा में भक्षण कर उत्तम रस रक्त आदि धातुओं को उत्पन्न करने से पारद द्वारा धातु निर्माण करना प्रसिद्ध ही है ।

ज्ञातव्य—माधव ने यह प्रकरण रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० १।१५) से उद्धृत किया है ।

(मूर्च्छना लक्षणम्)

अथाव्यभिचरितव्याधिघातकत्वं मूर्च्छना ॥ १४० ॥

प्र०—मूर्च्छनालक्षणमाह—अथाव्यभिचरितेति — अव्यभिचरितं = अनैकान्तिकत्वं विनानिश्चितरूपेणेत्यर्थः यथा स्यात्तथा व्याधिघातकत्वं = रोगविनाशकत्वं मूर्च्छना, किंवा अव्यभिचरित असौ व्याधिघातकश्चेति अव्यभिचरितव्याधिघातकस्तस्यभावस्तत्वंरोगनाशनत्वं मूर्च्छना। यदुक्तं रसहृदये—मूर्च्छित्वा हरति-

रुजम्-एतेनाचास्या मूर्च्छन संस्काराद्भेदोज्ञेयः, कञ्चुकदोष-नाशन प्रयोजनस्य मूर्च्छन संस्कारस्य तथा विधाभावात् ॥१४०॥

ज्ञातव्यम्—एष सन्दर्भो रसेन्द्र चिन्तामणित (अ० २-२) उद्धृतो माधवेन । रसतरङ्गिण्या (तरंग ६७ श्लो० १) मूर्च्छनायाः स्वरूप मस्यैवानुवाद रूप मस्ति ।

मूर्च्छना का लक्षण ।

उ०—निश्चित रूप से रोग नाश करने को मूर्च्छना कहते हैं। जैसा कि अन्य रस शास्त्रों में भी लिखा है—

(१) रसार्णवे—(अ) मूर्छितो हरतेव्याधिम्..........

(आ) ....मूर्च्छितोव्याधिनाशनम् ।

(२) रसहृदये
(३) रसरत्नसमुच्चये } —मूर्च्छित्वा हरितरुजम् ...

(४) रसमंजर्याम्—(अ) हरति सकल रोगान् मूर्च्छितो योनराणाम्............

(आ) मारितंदेह सिद्ध्यर्थं मूर्च्छितं व्याधिनाशने ।

(५) रसराजलक्ष्माम्—मूर्च्छितोगदहृत्..........

(६) रसेन्द्रसारसंग्रहे—मूर्च्छितोव्याधिघातकः ।

ज्ञातव्य—माधव ने यह प्रकरण रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० २।२) से उद्धृत किया है। रस तरङ्गिणी (तरंग ६, श्लोक १) में वर्णित मूर्च्छना का स्वरूप इसी का अनुवाद मात्र है।

मूर्च्छना तथा मूर्च्छन संस्कार में भेद।

पाठकों को यह ध्यान में रखना चाहिये कि यह मूर्च्छना का मूर्च्छन नाम के तीसरे संस्कार से बिलकुल भिन्न है, क्यों कि मूर्च्छन संस्कार से पारद के आवरण रूप कञ्चुक दोष दूर होते हैं और इस प्रकार दोनों के अलग-अलग प्रयोजन होने से मूर्च्छना तथा मूर्च्छन संस्कार दोनों अलग ही हैं।

(मूर्च्छनाप्रकारस्य बहुविधत्वम्)

तत्प्रकारा बहुविधाः। तत्र निर्गन्धसगन्धभेदेन द्विविधा भवति मूर्च्छना। निर्गन्धमूर्च्छनातु विषाद्यौषधभिरेकरूपा परमयोगिनां सम्मता। सगन्धा तु बहिर्धूमान्तर्धूम निर्धूमतस्त्रिविधा। त्रिविधाऽपि केवलं गन्धपिष्टि-गन्धबद्ध-गन्धजीर्ण-सगन्धकज्जली-धातुपिष्टि-भेदेनपञ्चधा। धातुपिष्टिश्च करकरजतशुल्वघनसत्व कालायसप्रभेदैः पंचधा। किञ्च मूर्च्छना जारणेत्यनर्थान्तरं प्रायः। सा चेष्टिका-काचकूपी-काचसम्पुट-सुवर्णयन्त्र भेदेनान्तर्धूमबहिर्धूमाभ्यां द्विविधा ॥ १४१ ॥

प्र०—मूर्च्छनाप्रकारस्य बहुविधत्वमाह—तदिति—तत्प्रकाराः =तस्याः पारद मूर्च्छनायाः प्रकारा बहुविधाः=नानाविधाः सन्तीति शेषः। तत्र पूर्वं सा मूर्च्छनानिर्गन्ध सगन्धभेदेन = निर्गंध

सगंधभेदेन = निर्गन्धमूर्च्छना सगन्धमूर्च्छना भेदेन द्विविधा = द्विप्रकारा भवति । निर्गन्धमूर्च्छना = गन्धकरहित पारद जारण रूपास्य मूर्च्छना तु विषाद्यौषधिभिरेकरूपा परमयोगिनाम् = उत्कृष्टयोगीश्वराणां सम्मता । सगन्धा = गन्धकसहित पारद जारण रूपा मूर्च्छनारससिंदूरादिरूपा तु बहिर्धूमादि भेदेन त्रिविधा । त्रिविधाऽपि केवलं सगन्धमूर्च्छना गन्धपिष्टि प्रभृति धातुपिष्टिपर्यंत भेदैः पञ्चधा = पञ्चप्रकारा। धातुपिष्टिश्चकनकादि प्रभेदैः = सुवर्णादिप्रभेदैः पञ्चधा । किञ्चमूर्च्छना जारणेत्यनर्थान्तरं = पर्यायःप्रायः, न तु सर्वत्र यथा कज्जलीरूपायां = सगन्धमूर्च्छनायां, अद्यत्वे प्रसिद्धे मुग्धरसे निर्गन्धमूर्च्छनाप्रकारे जारणारूपाभावात्॥१४१॥

ज्ञातव्यम्—रसतरङ्गिण्यां (तरङ्ग ६, श्लोक ५–६) निर्गन्धसगन्धाख्यौ मूर्च्छना भेदायुर्वेदप्रकाशनुसार मेव वर्णितौस्तः ।

मूर्च्छना प्रकार के अनेक भेद ।

उ०—पारद की मूर्च्छना प्रकार के अनेक भेद हैं, उनमें सर्व प्रथम, वह मूर्च्छना १ निर्गन्ध मूर्च्छना २ सगन्ध मूर्च्छना भेद से दो प्रकार की होती है, इनमें से गन्धक रहित पारद जारण रूप निर्गन्ध मूर्च्छना पारद को विष आदि औषधियों के साथ जारण का एक रूप करने से होती है, इसको श्रेष्ठ योगी ही अधिक आदर करते हैं और गन्धक सहित पारद का जारण कर रससिन्दूर आदि रूप सगन्ध मूर्च्छना, १ बहिर्धूम, २ अन्तर्धूम, ३ निर्धूम भेद से तीन प्रकार की होती है, इन तीनों भेद वाली वह सगन्ध मूर्च्छनाः १ गन्ध पिष्टि, २ गन्ध बद्ध, ३ गंध जीर्ण, ४ सगंध कज्जली, ५ धातु पिष्टी भेद से पाँच प्रकार की होती है,

और इनमें से धातु पिष्टी, सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, अभ्रकसत्व तथा लोह पिष्टी भेद से पाँच प्रकार की होती है, मूर्च्छना और जारणा अधिकतर पर्याय रूप में प्रयुक्त होते हैं। अधिकतर कहने का यह भाव है कि किसी-किसी मूर्च्छना के भेद में जारण नहीं होता है, इस लिये वहाँ पर मूर्च्छना और जारणा को पर्याय सिद्ध नहीं होते हैं। जैसे सगंधा मूर्च्छा के कज्जली भेद में और निर्गन्धा मूर्च्छना के मुग्धरस में जारण किया नहीं होती है, क्यों कि कज्जली तथा मुग्धरस में केवल मर्दन ही होता है। सगंध मूर्च्छना इष्टिका काच कूपी, काच संपुट सुवर्ण यन्त्र भेद से अन्तर्धूम तथा बहिर्धूम दो प्रकार की है ॥ १४९ ॥

ज्ञातव्य—रस तरङ्गिणी (अ० ६, श्लोक ३-६) में निर्गन्धा तथा सगंधा मूर्च्छना का वर्णन आयुर्वेद प्रकाश के आधार पर किया गया है।

निर्गन्ध मूर्च्छना—

काल कूट आदि विष तथा आक के दूध आदि उपविषों के साथ मर्दन कर मूर्च्छना करने का वर्णन आगे १७६ से १८१ श्लोकों में किया जायगा, इस मूर्च्छना के तीव्र होने के कारण योगी पुरुष इसका आदर करते हैं।

सगन्ध मूर्च्छना—

गन्ध पिष्टि आदि सगन्ध मूर्च्छना के भेदों के लक्षण नीचे लिखे जाते हैं—

गन्ध पिष्टि—

इसको गन्ध पिष्टिका, गंधक पिष्टिका, पिष्टि अथवा पिष्टिका बन्ध भी कहते हैं।

निर्माण विधि—

१२ रत्ती शुद्ध पारद तथा दो रत्ती शुद्ध गन्धक डाल कर घृत के साथ अत्यन्त तीव्र धूप में घोटे, जब वह मक्खन के समान हो जाय, तब यह गन्धक पिष्टि तैयार समझनी चाहिये । यथा—

१—भागा द्वादश सूतस्य द्वौभागौ गन्धकस्य च ।
मर्दयेद्घृतयोगेन जायते गंध पिष्टिका ॥
(रसेन्द्रचिन्तामणि अ० ५-२०)

इसके अन्ययोग भी हैं । दूध के साथ मर्दन कर भी यह पिष्टि बनाई जाती है । यथा—

२—अर्कांश तुल्याद्रसतोऽथ गन्धा-
न्निष्कार्धतुल्यात्त्रुटिशोऽभिखल्ले ।
अर्का तपे तीव्रतरे विमर्द्यात्-
पिष्टी भवेत्सा नवनीत रूपा ॥

३—खल्ले विमर्द्य गन्धेन दुग्धेन सह पारदम् ।
पेषणात्पिष्टतां याति सा पिष्टीति मता परैः ॥
(रसरत्न समुच्चय अ० ८, श्लोक ७—८)

प्रयोजन—गन्धक पिष्टि का प्रयोजन गन्धक जारण है । यथा—

गन्धपिष्टि कयातत्र गोलः स्याद्गन्ध जारणे ॥
(रसेन्द्रचिन्तामणि अ० ३-५१)

४—तीव्रातपे गाढतरावमर्दात् पिष्टिर्भवेत्सा नवनीत रूपा ।
ख्यातः स सूतःकिलपिष्टि बद्धः संदीपनंःपाचनकृद् विशेषात् ॥
(आयुर्वेद प्रकाश अ० १)

गन्धबद्ध—

१ पल शुद्ध पारद तथा १ कर्ष शुद्ध गन्धक को, तप्तखल्व (पृथ्वी में खोदे हुये गढ़े में बकरी की विष्ठा तथा भूसा की अग्नि पर रखे हुये गर्म खरल) में डाल कर उसको देव दाली के रस से डुबा कर हाथ की उङ्गली से मर्दन करे यह गन्ध बन्ध कहलाता है, इसका फल गन्धक जारण तथा नागमारण आदि है। यथा—

शुद्ध सूत पलैकन्तु कर्षैकं गन्धकस्य च।
स्विन्न खल्वे विनिक्षिप्य देवदाली रसप्लुतम्।
मर्दयेच्चकराङ्गुल्या गन्ध बन्धः प्रजायते ॥ १६.
फलञ्चास्य गन्धक जारण नागमारणादि ॥ २३ ॥
(रसेन्द्रचिन्तामणि अ० ५)

गन्ध जीर्ण—

बालुका यन्त्र, भूधर यन्त्र अथवा कच्छप यन्त्र में शुद्ध पारद के साथ शुद्ध गन्धक का जारण करने पर गन्ध जीर्ण पारद कहलाता है। यथा—

१—असमशकलद्वयात्मक लोहसम्पुट-
केन सिकतायन्त्र मध्ये भूधरे वा त्रिलोचनः।
(रसेन्द्रचिन्तामणि अ० २-६)

२-(अ) 'यन्त्रमध्ये तु भूधर' इति त्रिविक्रमः।
(आ) 'कूर्मयन्त्रे रसे गन्धं षड्गुणं जारयेद्बुधः इत्यन्ये।
(आयुर्वेदप्रकाश, १)

सगन्ध कज्जली—

खरल में शुद्ध पारद तथा समान तथा द्विगुण आदि भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर मर्दन करने से कज्जली बनती है,

इसका इतना मर्दन करना चाहिये, कि वह कज्जल के समान काली होजाय। यथा—

१–कज्जलीरसगन्धोत्था सुश्लक्ष्णा कज्जलोपमा।
तत्तद्योगेन संयुक्ता कज्जलीबन्ध उच्यते ॥
(आयुर्वेदप्रकाश, अ० १)

२–गन्धाद्यैः समभागैस्तु कज्जली मर्दितो रसः।
(रसरत्नाकर)

३–धातुभिर्गन्धकाद्यैश्च निर्द्रवैर्मर्दितो रसः।
सुश्लक्ष्णा कज्जलाभोऽसौकज्जलीत्यभिधीयते ॥

धातुपिष्टि--

पारद के साथ चौथाई (¼) भाग सुवर्णपत्र, चाँदी, तांबा, अभ्रकसत्व तथा लोह आदि को नीबू के रस तथा समान गन्धक में घोटने से मक्खन के समान बनी हुई पिष्टि धातुपिष्टि कहलाती है, यह धातुपिष्टि पाँच प्रकार की होती है। यथा—

(१) कनकपिष्टि (२) रजतपिष्टि (३) शुल्वपिष्टि (४) घन (व्योम) सत्वपिष्टि (५) कालायस (लोहपिष्टि)।

कनकपिष्टि--

कृत्वा कण्टकवेधीनि स्वर्णपत्राणि शोधयेत्।
चतुर्गुणेन सूतेन मर्दयेन्निम्बुनीरतः ॥
नवनीतनिभां पिष्टिं कृत्वा तां बलिना सह।
तुल्येन मर्दयेत्...... ....(रस दर्पण)

इसी प्रकार रजत (चाँदी) ताम्र तथा लोह धातुओं की पिष्टि बनती है। व्योम सत्व (अभ्रकसत्व) पिष्टि का लक्षण—

१-सत्वमावर्तितं व्योम्नः शोधितं काच टङ्कणैः।
चिञ्चाफलाम्ल सेहुण्डपत्र कल्कनिषेवणैः॥
पक्त्वा निष्पाद्यतां देवि ! रसपिष्टि समं भवेत्॥

(रसार्णव)

२-अभ्रसत्वं समावर्त्य समांशं काच टङ्कणम्।
दत्वा दत्वात्रिवारं तद्वज्रमूषागतं धमेत्॥
अम्लवर्गं स्नुहीपत्र चिञ्चा बीजं सवल्कलम्।
कल्कयेत्तत्र तत्सत्वं सप्तवारं निषेचयेत्॥
मृदुशुभ्रं भवेत्तच्च हितं सूतस्य जारणे॥

(रसरत्नाकर)

(मूर्च्छनायाः श्रेष्ठ प्रकारः)

तत्र षड्गुणगन्धक जारण साधीयसी निगद्यते। सा तु स्वेदनमर्दनादिसंस्कारैव बद्धस्य रसराजस्य कार्या१४२॥

प्र०—मूर्च्छनायाः श्रेष्ठप्रकारमाह—तत्रेति—तत्र = बहुषु-मूर्च्छनाप्रकारेषु षड्गुणगन्धकजारणाषड्गुणेन = पारदापेक्षया-षड्गुणेनगन्धकेनसहपारदस्य बहिर्धूमान्तर्धूमभेदेन बालुकायन्त्र कच्छपयन्त्र भूधरयन्त्रगर्भयन्त्रादिभिर्जारणा = जारणं साधीयसी = अतिशयेन साधुः, प्रशस्ततम इत्यर्थो निगद्यते = कथ्यते रस-वैद्यैरितिशेषः । सा = षड्गुणगन्धकजारणा तु स्वेदनमर्दनादि संस्कारैरेवबद्धस्य = मूर्तिबद्धस्यरसराजस्य पारदस्यकार्या ॥१४२॥

मूर्तिबद्धस्यपारदस्य लक्षणमग्रिमे १४३ संख्यकेसूत्रे स्वयमेव लिख्यतेग्रन्थकारेण माधवेन ।

ज्ञातव्यम्—एष सन्दर्भोरसेन्द्र चिंतामणितः (अ० २।५) उद्धृतो माधवेन ।

मूर्च्छना का सर्वश्रेष्ठ प्रकार ।

उ०—मूर्च्छना के बहुत प्रकारों में षड्गुणगन्धक जारण प्रकार (छै गुने शुद्ध गन्धक के साथ शुद्ध पारद का जारण) सब से श्रेष्ठ है, इसलिये उसका वर्णन किया जाता है । यह षड्गुण गन्धकजारण, अन्तर्धूम भेद में बालुकायन्त्र, कच्छप-यन्त्र, भूधरयन्त्र और गर्भयन्त्र आदि द्वारा किया जाता है, और बहिर्धूम भेद में बालुकायन्त्र से किया जाता है, इनमें से अन्तर्धूम विधि श्रेष्ठ है,इसके अतिरिक्त यह षड्गुणगन्धजारण स्वेदन मर्दन आदि संस्कारों से मूर्तिबद्ध पारद का करना चाहिये । मूर्तिबद्ध पारद का लक्षण आगे के १४३ वें सूत्र में स्वयं माधव ने ही लिखा है ॥ १४२ ॥

ज्ञातव्य—माधव ने यह प्रकरण, रसेन्द्रचिन्तामणि (अ० २।५) उद्धृत किया है। बहिर्धूम विधि से अन्तर्धूम विधि श्रेष्ठ होती है, क्योंकि बहिर्धूम विधि में गन्धक का पूर्णतया जारण नहीं होता है, परन्तु अन्तर्धूमविधि में पूर्ण गन्धक का जारण हो जाता है, इसलिये अन्तर्धूमविधि से जारण करना ही श्रेष्ठ है। इस बात की पुष्टि माधव ने आयुर्वेदप्रकाश में आगे भी १८८ वें सूत्र में कहा है । यथा—

आद्या (अन्तर्धूमजारणा) यथा—

(मूर्तिबद्ध पारदस्य लक्षणम्)

बन्धनं तु स्वाभाविक द्रवत्वे सति *वह्निनाऽनुड्डीयमानत्वं मूर्तिबद्धत्वम् । तत्तु नियमनान्तैः संस्कारैर्भवति ॥१४३॥

प्र०—मूर्तिबद्ध पारदस्य लक्षणमाह—बन्धनमिति—पारदस्य बन्धनं मूर्तिबद्धत्व मुच्यतेतच्च–स्वाभाविक द्रवत्वे= सांसिद्धिक द्रवत्वे सति वह्निना=अग्निना, अनुड्डीयमानत्वम्= अनाश्यमानत्वं, अग्निसहत्वं वा मूर्तिबद्धत्वम् यद्यपि गन्धके पारदं प्रक्षिप्यकज्जलिकाविधाय बालुका यन्त्रेण जारणे कृतेऽपि यावद्गन्धकस्य स्थितिस्तावत्पारदो नोड्डीयते तथाप्येतन्नैवमूर्तिबद्धत्वं यत एतत् पारदस्यानुड्डीय मानत्वं गन्धक जारण पर्यन्त मेवास्ति गन्धके जीर्णे पारदस्याप्युड्डीयमानत्वं संलक्ष्यते अत एतामतिव्याप्तिंवारयितुं स्वाभाविकद्रवत्वे सति इति सारर्भितं विशेषण मुपन्यस्तम् । तत्तु = पारदस्य मूर्तिबद्धत्वं नियमनान्तैः = स्वेदनादिनियमनान्तैः संस्कारैर्भवति । यदुक्तं नियमन संस्कारे —

सर्पाक्षी चिञ्चिका वन्ध्या भृङ्गाद्र्कनकाम्बुभिः ।
दिनं संस्वेदितः सूतो नियमात्स्थिरतां व्रजेत् ॥

(आयुर्वेद प्रकाशे. अ० १-६५)

वस्तुतस्तु नियमन संस्कारानन्तरं सोमवल्ली प्रभृति दिव्यौषधीनां रसेनमर्दन विधिनामूर्तिबद्धः पारदो भवति ।

---

* 'अनुच्छिद्यमानत्वम्' इति पाठान्तरं रसेन्द्रचिंतामणौ ।

ज्ञातव्यम्—एष सन्दर्भो रसेन्द्र चिन्तामणितः (३ । २) उद्धृतो माधवेन ।

मूर्तिबद्ध पारद का लक्षण ।

उ०—जब स्वाभाविक द्रव रूप में स्थित पारद, अग्नि पर रखने से नहीं उड़ता है, तब पारद की इस अवस्था का नाम मूर्तिबद्ध अवस्था है और वह पारद मूर्तिबद्ध पारद कहलाता है। यद्यपि खरल में, शुद्ध गन्धक में समान भाग शुद्ध पारद डाल घोट कर कज्जली बना बालुका यन्त्र में जारण करने से भी जब तक गन्धक रहता है, तब तक अग्नि से पारद नहीं उड़ता है, परन्तु यह पारद की मूर्तिबद्ध अवस्था नहीं होती, क्यों कि अग्नि से पारद न उड़ने की यह अवस्था गन्धक का जारण होने तक ही रहती है, गन्धक का जारण होते ही पारद भी उड़ने लगता है, इसलिये इस अति व्याप्ति को दूर करने के लिये इस लक्षण में 'स्वाभाविक द्रवत्वे सति' यह सार्थक विशेषण दिया गया है।"

पारद की यह मूर्तिबद्ध अवस्था पारद के स्वेदन आदि नियमन संस्कार करने पर उत्पन्न होती है। जैसा कि पहिले पारद को नियमन संस्कार के प्रकरण में लिखा जा चुका है।

सर्पाक्षीचिञ्चिका वन्ध्याभृङ्गाब्दकन काम्बुभिः ।
दिनंसंस्वेदितः सूतो नियमात्स्थिरतां व्रजेत् ॥

(आयुर्वेदप्रकाश अ० १।६५)

वास्तव में नियमन संस्कार के पश्चात् फिर सोमवल्ली आदि दिव्यौषधियों के रस में मर्दन करने पर पारद मूर्तिबद्ध होता है।